वनस्पति वाणी

सितम्बर, 2024 अंक 33

BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

LiFE Lifestyle for Environment

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉम्पलेक्स, सॉल्ट लेक सिटी, कोलकाता -700 064 द्वारा प्रकाशित

निदेशक और अन्य योग प्रशिक्षण शिविर का शुभारंभ करते हुए

जैवविविधता प्रबंधन समिति के द्वारा बांग्ला भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री का विमोचन।

डॉ. ए. ए. माओ, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा वन महोत्सव व 'एक पेड़ मां के नाम' के अवसर पर वृक्षारोपण करते हुए ।

डॉ जीवन सिंह जलाल, वैज्ञानिक-'ई' द्वारा विद्यार्थियों के बीच 'वनस्पति विविधता' पर व्याख्यान।

ISSN: 0975-4342

वनस्पति वाणी

सितम्बर 2024 अंक 33

पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
वृक्षदं पुत्रवत् वृक्षास्तारयन्ति परत्र च॥

(**तात्पर्य** : फलों और फूलों वाले वृक्ष मनुष्यों को तृप्त करते हैं। वृक्ष देने वाले अर्थात् समाजहित में वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति का परलोक में तारण भी वृक्ष करते हैं।)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

LiFE
Lifestyle for Environment

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2024

इस प्रकाशन का कोई भी अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित / रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलैक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

संरक्षण एवं प्रधान सम्पादक
ए.ए. माओ

सम्पादक मण्डल
दिनेश कुमार अग्रवाला
जीवन सिंह जलाल
श्याम किशोर महतो

सहयोग
कैलाश प्रसाद कुशवाहा

ISSN : 0975-4342

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, तृतीय एम.एस.ओ. भवन, एफ विंग, डि एफ ब्लॉक, सेक्टर-1, सॉल्ट लेक सिटी, कोलकाता - 700064 द्वारा प्रकाशित एवं कलकत्ता रेप्रो ग्राफिक्स, 36/8बी, साहित्य परिषद स्ट्रीट, कोलकाता - 700006 द्वारा मुद्रित।

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में राजभाषा हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग दिया है।

डॉ. ए.ए. माओ
निदेशक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

पर्यावरण सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है। सामान्य अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। पर्यावरण सभी प्रजातियों के स्वास्थ्य और पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हम मनुष्य अपनी समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। पृथ्वी कई जीवित प्रजातियों का घर है, और हम सभी पानी, हवा, भोजन और अन्य संसाधनों के लिए पर्यावरण पर निर्भर हैं। इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा एवं सुरक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। फिर भी हमारा पर्यावरण दिन-प्रतिदिन मानव निर्मित तकनीक और आधुनिकीकरण की वजह से नष्ट होता जा रहा है। सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक और बौद्धिक रूप से पर्यावरण प्रदूषण हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रहा है।

विज्ञान के क्षेत्र में असीमित प्रगति तथा नये आविष्कारों की स्पर्धा के कारण आज का मानव प्रकृति पर पूर्णतया विजय प्राप्त करना चाहता है। इस कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों से मानव प्राकृतिक संतुलन को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है। दूसरी ओर धरती पर जनसंख्या की निरंतर वृद्धि, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की तीव्र गति से जहाँ प्रकृति के हरे भरे क्षेत्रों को समाप्त किया जा रहा है। वहीं दूसरी और प्रकृति के अत्यधिक दोहन के कारण न केवल मानव जाति को बल्कि पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी प्राणियों को ऐसे वातावरण में धकेल दिया है जहां स्वस्थ जीवन की मात्र कल्पना कर सकते है । इसलिए पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण प्रबंधन वर्तमान दौर की नितांत आवश्यकताएं हैं। आज सबसे ज्यादा जरूरी है कि पर्यावरण संकट के मुद्दे पर आम जनता और सुधी पाठक जागरुक बने। भारत में पेड़-पौधों को प्राचीन काल से ही पूजा जाता रहा है। पेड़-पौधों के बिना अधिकांश जीवों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का शीर्ष वर्गिकी शोध संस्थान भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण अपनी स्थापना के बाद से ही भारत के दूरस्थ से दूरस्थ इलाकों के पेड़-पौधों से संबंधित अनोखे लोक वानस्पतिक ज्ञान को संकलित और अद्यतन करके राष्ट्र की सेवा करता रहा है। विभाग द्वारा वार्षिकी के रूप में प्रकाशित वनस्पति वाणी भारत की समृद्ध वनस्पति विविधता संबंधी समेकित ज्ञान और राजभाषा नीति के कार्यान्वयन को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास है।

वनस्पति वाणी का 33 वां अंक समस्त देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में 'वनस्पति विविधता', 'लोक वनस्पति विज्ञान', 'चिर-परिचित वनस्पति', 'व्यक्तित्व', 'समसामयिक परिदृश्य' शीर्षकों के अंतर्गत 31 लेख, 'काव्यांजलि' शीर्षक के अंतर्गत 03 कविता तथा 'पटाक्षेप' शीर्षक के अंतर्गत 02 लेख और कार्यकलाप के चित्र सम्मिलित किए गए हैं। इस अंक में प्रयुक्त शब्दों और वैज्ञानिक नामों को अधिकाधिक मानकीकृत रूप में रखने का प्रयास किया गया है। मुझे पूरा विश्वास है कि पिछले अंकों की तरह यह अंक भी वर्गिकी वैज्ञानिकों और आम पाठकगण के लिए रोचक और ज्ञानवर्द्धक होगा।

आवरण चित्र

उत्तरी अन्दमान के सैडल पीक से चित्रित एक मनोरम दृश्य
चित्र : विवेक सी.पी., भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

अनुक्रमणिका

वनस्पति विविधता

1	जरायुजता : प्रजनन कौशल की एक क्षमता	पंकज अरविंद ढ़ोले, प्रकाश होरो, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी, महादेवकुमार एस., लाल जी सिंह	1
2	प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, बड़ापानी की बहुरंगी बांस विविधता	एल. आर. मैती, बी. बी. टी. थाम., सौरभ सचान, विजय, हेमन्त कुमार दास, डेविड एल. बियते एवं एन. ऑडियो	3
3	कैरियोफिलेसी : सौंदर्य, उपयोगिता और अनुकूलन की एक वानस्पतिक टेपेस्ट्री	सिमरजीत कौर, छाया देओरी, विजय, डेविड एल. बिअते एवं उमा शंकर	5
4	*हेबेनेरिया एक्यूइफेरा* वाल. एक्स. लिंड्ल . (ऑर्किडेसी) : भारत के मेघालय राज्य का एक सशक्त सजावटी आर्किड	वाई. महेश, हरेकृष्ण स्वैन, आर. कोट्टईमुथु, विजय एवं एन. ऑडियो	6
5	किताम पक्षी अभयारण्य के पक्षी-सहयोगी पादप	बसंत कुमार सिंह, मोनालिसा डे एवं राजीब गोगोई	8
6	हरियाली होगी तो ठंडक भी आएगी	वैशाली गौतम एवं एस.के.सिंह	11
7	इंद्रायण	संजय मिश्रा, पी. हरिकृष्णा, रवि प्रसाद एवं विनोद मैना	13
8	पर्णांगो में बीजाणु विविधता एवं वर्गीकरण में उनका महत्त्व और योगदान	लतिका सागरवाल, बृजेश कुमार एवं सुशील कुमार सिंह	14
9	*ब्रेनिया इंसिग्निस* (हुकर) जे. स्मिथ- एक अनोखी संकटग्रस्त पर्णांग जाति	हरमिन्दर सिंह, बृजेश कुमार एवं सुशील कुमार सिंह	18

लोक वनस्पति विज्ञान

10	रामफल, सीताफल, लक्ष्मणफल	बी. लक्ष्मणुडु	21
11	*जसमिनम पारकेरी* डॉन : पश्चिम हिमालय की संकीर्णरूप से स्थानिक एवं लुप्तप्राय जाति	भावना जोशी, सुशील कुमार सिंह एवं अम्बर श्रीवास्तव	23
12	देओरी जनजाति के जातीय चिकित्सा में प्रयोग होने वाले पौधे	छाया देओरी, विजय, बिस्वा बिकोमिया देओरी एवं एस. आर. तालूकदार	26
13	*मैगनोलिया* लिनिअस : विकासवादी, औषधीय और आर्थिक महत्व	विजय, डेविड एल. बियते, सुबर्ना हाजोंग, छाया देओरी, दिनेश कुमार अग्रवाला एवं एन.ऑडियो	30
14	बतुकम्मा महोत्सव : तेलंगाना राज्य में फूलों का उत्सव	के.रविकुमार, पी.हरिकृष्णा एवं एल.रासिंगम	32
15	पश्चिम बंगाल के अलीपुरद्वार जिले में रहने वाले टोटो जनजाति के कुछ अल्पज्ञात पारंपरिक खाद्य व पेय	देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक	37
16	राजस्थान के उपयोगी बेल : जलजामिनी एवं पीलवान	संजय मिश्रा, रवि प्रसाद एवं विनोद मैना	40

चिर- परिचित वनस्पति

17	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में एक आत्मघातक वृक्ष : *सेर्बेरा* एल. (एपोसिनेसी)	अनिल कुमार मिडिगेसी, पंकज अरविंद ढ़ोले, गौतम अनुज एक्का, प्रकाश होरो, महादेवकुमार एस. एवं लाल जी सिंह	42
18	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में जंगली खाद्य मशरूम	महादेवकुमार एस., श्रीधर के आर, पंकज अरविंद ढ़ोले, प्रकाश होरो, अनिल कुमार मिडिगेसी, गौतम अनुज एक्का एवं लाल जी सिंह	44
19	*एनाफेलिस बुसुआ* : हिमालय का एक औषधीय पौधा	प्रिया सिंह कुशवाहा एवं अभिषेक भट्टाचार्जी	45
20	*कॉमिफोरा वाइटियाइ* (गुग्गुल) एक बहुपयोगी संकटग्रस्त औषधीय प्रजाति	प्रियंका, गिरिराज सिंह पँवार एवं संदीप कुमार चौहान	47
21	समुद्री शैवाल (डल्स) – आयरलैंड के लिए वरदान	कैलाश प्रसाद कुशवाहा	50

अनुक्रमणिका

व्यक्तित्व

22	प्रो. हरिहर पटनायक : शैवालविद एवं शिक्षाविद	सुकुमार भक्ता, आर. के. गुप्ता, शिब प्रसाद अधिकारी एवं सुदिप्त कुमार दास	51

तकनीकी/समसामयिक परिदृश्य

23	भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, बारापानी (उमियाम), मेघालय के प्रायोगिक वनस्पति उद्यान में औषधीय पौधों का संरक्षण	बी. बी. टी. थाम., एल. आर. मियेती, छाया देओरी, विजय, डेविड एल. बियते एवं एन. ऑडियो	53
24	पूर्वोत्तर भारत में जैविक खेती: दृष्टिकोण और अवसर	हरेकृष्ण स्वैन, वाई. महेश, आर. कोट्टईमुथु एवं विजय	59
25	भारत के प्रमुख निर्यातकीय एवं राजकीय फल	नंदिता शर्मा, हेमन्त कुमार दास, बी. बी. टी. थाम, लैशिराम रिकी मैती, सौरभ सचान एवं विजय	61
26	जलवायु परिवर्तन परिपेक्ष में ऊपरी गंगा रामसर साइट के अतुलनीय जैविक संसाधन	आरती गर्ग	63
27	कृत्रिम बीज	एम. यू. शरीफ़, एस. पी. पांडा एवं रजत पाल	67
28	टेस्ट ट्यूब वन	एम. यू. शरीफ़, एस. पी. पांडा एवं रजत पाल	69
29	ई –कचरा: एक गंभीर समस्या	देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक एवं डिम्पल जैन	72
30	कलम एवं पेंसिल	मानस भौमिक एवं डिम्पल जैन	77
31	भारत में आर्द्रभूमियाँ	सिंचिता बिस्वास एवं डॉ. उमेशकुमार ल. तिवारी	79
32	*फ्लोमोइडस सुपर्बा* की जनसांख्यिकी पर संभावित खतरे एवं वर्त्तमान स्थिति	आरती गर्ग एवं एस.के. सिंह	84

काव्यांजली

33	वन एवं वन महोत्सव	प्रकाश होरो	87
34	राजभाषा की आत्मकथा	थान सिंह निरंजन	89
35	प्रकृति की सुंदरता	थान सिंह निरंजन	90

पटाक्षेप

36	पर्यावरण की हत्या और जहरीला कचरा	कैलाश प्रसाद कुशवाहा	91
37	गतिविधियां (सचित्र)		92

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 01-02 (2024)

जरायुजता: प्रजनन कौशल की एक क्षमता

पंकज अरविंद ढ़ोले, प्रकाश होरो, गौतम अनुज एक्का, अनिल कुमार मिडिगेसी, महादेवकुमार एस. एवं लाल जी सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर

प्रस्तुत लेख में पौधें में जरायुजता को एक प्रजनन क्षमता के रूप में उल्लेखित किया गया है। वास्तव में यह समय से पहले अंकुरित होने वाले बीजों का जिक्र करने का एक तरीका है जब वे अभी भी अपने मूल फल से जुड़े हुए हैं। हालांकि जरायुजता अपरा स्तनधारियों में बेहतर जाना जाता है यह कई सरीसृपों कुछ उभयचरों, कीड़ों में भी होता है।

जरायुजता सामान्यतया लवणी जल आवास के पौधे जैसे मैंग्रोव पौधों की प्रमुख विषेषता है परन्तु नॉन मैंग्रोव पौधों में भी जरायुजता को प्रलेखित किया गया है। मैंग्रोव उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक अद्वितीय तटीय पारिस्थितिकी तंत्र है। ये नमक-सहिष्णु वृक्षों तथा झाड़ियों के घने वन हैं जो अंतर्ज्वारीय क्षेत्रों- जहाँ भूमि और समुद्र मिलते हैं, में विकसित होते हैं। इन पारिस्थितिक तंत्रों की विशेषता खारे पानी, ज्वारीय विविधताओं और कीचड़युक्त, ऑक्सीजन-रहित मृदा जैसी कठोर परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता है।

भारत में मैंग्रोव वनस्पतियों का वितरण प्रायः सभी समुद्र तटीय भूभागों में उल्लेखित है जिनमें से अंडमान व निकोबार द्वीप समूह भारत के मुख्य भूभाग से अलग-थलग स्थित वह भौगोलिक भूभाग है जो अपनी अद्वितीय पादप विविधता के लिए विश्व विख्यात है। यह 572 द्वीपों का वह समूह है जहाँ एक उष्णकटिबंधीय सदाबहार भौगोलिक वातावरण आच्छादित है और जरायुजता के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान है। इन द्वीपों के समुद्री तट मैंग्रोव वनस्पतियों से आच्छादित हैं और इनमें जरायुजता को प्रजनन की एक पारिस्थितिकीय अनुकूलन क्षमता के रूप में देखा जा सकता है। इन द्वीपों में सालाना 300-380 से. मी. वर्षा होती है एवं सापेक्षिक आर्द्रता 85 प्रतिशत तक बनी रहती है। यहाँ का औसत तापमान 23-35 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। ये द्वीप समूह भूमध्य रेखा के समीप स्थित हैं। इन द्वीपों पर सागर तटीय वनस्पति (मैंग्रोव) की लगभग 37 जातियों का वितरण उल्लेखित है जो 616 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। अधिकांश क्षेत्रों में ब्रुगुएरा, सेरिओप्स, कंडेलिया, राइज़ोफोरा आदि की प्रभाविता देखने को मिलती है। इन द्वीपों के उष्णकटिबंधीय सदाबहार भौगोलिक वातावरण से हाल ही में एक नॉन-मैंग्रोव पौधे में जराजुयता का उल्लेख किया गया है जिसे सामान्य भाषा में पटसन कहा जाता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में हिबिस्कस कैनाबिनस एल. (केनाफ) के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा विविध नॉन-मैंग्रोव पौधे जैसे मकई, टमाटर, मिर्च, नाशपाती, खट्टे फल आदि में भी जराजुयता का उल्लेख मिलता है। अध्ययनों के आधार पर ऐसा उल्लेख मिलता है कि जराजुयता में बीज अंकुरण के लिए आंतरिक एवं बाह्य वातावरणीय दोनों कारक उत्तरदायी होते हैं।

मैंग्रोव विभिन्न प्रकार के पादपों एवं जीवों की प्रजातियों को आवास प्रदान करते हैं, जो विभिन्न सागरीय और स्थलीय जीवों के प्रजनन, संवर्द्धन एवं चरागाह के रूप में कार्य करते हैं। उनकी सघन जड़ों और स्तंभ मूलों का उलझा हुआ जाल तटीय अपरदन को रोकता है तथा लहरों एवं धाराओं के प्रभाव को कम करता है। तूफान एवं चक्रवात के दौरान मैंग्रोव उनकी ऊर्जा को अवशोषित और नष्ट कर सकते हैं जिससे अंतर्देशीय क्षेत्रों तथा मानवीय बस्तियों को विनाशकारी क्षति से बचाया जा सकता है। मैंग्रोव अत्यधिक कुशल कार्बन सिंक होते हैं, जो वायुमंडल से वृहद् मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड को अलग करते हैं और इसे अपने बायोमास एवं अवसाद के रूप में संग्रहीत करते हैं। जलवायु परिवर्तन से चक्रवात और तूफान जैसी चरम मौसमी घटनाएँ भी सामने आती हैं, जो मैंग्रोव वनों को गंभीर नुकसान पहुँचा सकती हैं। इस अद्वितीय तटीय पारिस्थितिकी तंत्र बचाने के लिए जरायुजता वरदान साबित होती हैं। मैंग्रोव के पौधों में बीज ज़मीन पर गिरने से पहले पेडों से लगे हुए फलों के भीतर ही अंकुरित होने लगते हैं और अंकुरण पूर्ण होने के साथ-साथ अंकुरित बीजयुक्त फल नीचे गिर जाता है और इसके मूलांकुर कीचड़/मिट्टी में प्रवेश कर जाते हैं साथ ही साथ प्राणंकुर विकसित होकर एक नवजात पौधे का रूप धारण कर लेता है जो जरायुजता को दर्शाते हुए मैंग्रोव में प्रजनन कौशल की एक क्षमता को प्रदर्शित करता है। खारे पानी में पाये जाने वाले मैंग्रोव के पौधों में बीजों के अंकुरण की एक प्रबल चुनौती होती है जिसकी रिक्त पूर्ति जरायुजता नामक प्रजनन क्षमता के द्वारा इन पौधों द्वारा की जाती है जिसे एक

परिस्थितिकीय अनुकूलन के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि सामान्य दशा में मैंग्रोव के पौधों में ऐसी आवासीय दशाएँ नहीं होती जहाँ बीज स्थाई रूप में मिट्टी में जाकर अंकुरित हो सके। जरायुजता सामान्यतः उन दशाओं में देखने को मिलती है जहाँ पर आर्द्रता एवं प्रकाश की कमी या अंधेरा होता है। जरायुजता को सामान्यतः समस्त मैंग्रोव पौधों में देखा जा सकता है । अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के उष्णकटिबंधीय सदाबहार भौगोलिक वातावरण में जरायुजता को प्रजनन कौशल की एक क्षमता और पर्यावरणीय अनुकूलन के रूप में अवलोकित होता है।

चित्र 1. मैंग्रोव : *ब्रुगुएरा जिम्नोरिज़ा* में जरायुजता

चित्र 2. नॉन-मैंग्रोव : हिबिस्कस कैनाबिनस एल. (केनाफ) में जरायुजता

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 03-04 (2024)

प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, बारापानी की बहुरंगी बांस विविधता

एल. आर. मैती , बी. बी. टी. थाम., सौरभ सचान, विजय, हेमन्त कुमार दास, डेविड एल. बियते एवं एन. ऑडियो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र शिलांग का प्रायोगिक वनस्पति उद्यान समुद्र तल से एक हजार फीट ऊंचाई पर स्थित 25 एकड़ क्षेत्रफल युक्त अत्यंत मनोरम स्थान है। इंडो बर्मा परिसीमा के कारण यह क्षेत्र विविध दुर्लभ, संकटग्रस्त, लुप्तप्राय एवं औषधीय तथा आर्थिक महत्व वाली विविध वनस्पतियों से सुस्सजित है।

इस प्रांगण में बहुरंगी बांसों की अनेक प्रजातियाँ संरक्षित है। भारत में बांसों का मुख्य भौगोलिक वितरण 46° डिग्री उत्तरी आक्षांश से 47° डिग्री दक्षिणी आक्षांश के मध्य ही अधिक देखने को मिलता है। उत्तर-पूर्वी राज्यों एवं पश्चिम बंगाल से ही भारत के कुल बांस उत्पादन का 50 फीसदी प्रतिवर्ष मिलता है। इसके अतिरिक्त इसका उत्पादन अंडमान निकोबार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी घाटों से भी मिलता है।

भारत में लगभग 15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में बांसों की खेती की जाती है। आई. एस. एफ. आर., 2021 की एक रिपोर्ट के अनुसार मिजोरम में लगभग 57 प्रतिशत क्षेत्र में बांस के जंगल है, जो कि लगभग 400 से 500 मीटर ऊंचाई पर विस्तारित है। इसी कारण मिज़ोरम को बांसों की रानी कहा जाता है।

एक आंकड़े के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 14 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र में बांसों की खेती की जाती है। जिससे प्रतिवर्ष लगभग 17 मिलियन टन बांस का उत्पादन होता है। भारत सरकार का कृषि एवं कृषक वेलफेयर मंत्रालय द्वारा भारतीय बांसों की गुणवत्ता एवं उत्पादन में देशी हस्त निर्मित उत्पादों को बढ़ावा देने हेतु राष्ट्रीय बांस मिशन की स्थापना की गई है। विश्व बांस संघ की स्थापना सन 1992 में जापान में की गयी थी। बहुपयोगी बांसों के लिए जन-जागरूकता के लिए प्रत्येक वर्ष 18 सितम्बर को विश्व बांस दिवस मनाया जाता है।

बांस सर्वाधिक तेजी से वृद्धि करने वाले पोएसी कुल के सदाबहार पौधे है। इसकी कुछ प्रजातियाँ तो प्रतिवर्ष 80-90 सेंटीमीटर तक बढ़ जाती है। बांस अपने स्थान पर पाये जाने वाली अन्य वनस्पतियों की अपेक्षा 30-40 प्रतिशत अधिक ऑक्सीजन वायुमंडल में छोड़ते है। बांस हमारे पारितंत्र में वायुमंडलीय कार्बन पृथक्क्रराण, मृदा अपरदन, भूमिगत जल सरंक्षण, पवन अवरोधी, बायोफेन्सिंग, मृदा को खाद बनाने में प्रमुख भूमिका निभाते है। दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पांडा भालुओ का यह मुख्य भोजन होता है।

बांसों की प्रथम विस्तृत व्याख्या बेम्बूस आफ इंडिया, म्यांमार एवं मलाया को गैम्बल ने सन 1896 में प्रकाशित किया तत्पश्चात कुछ संशोधनो के बाद इसे ब्लाटर ने वर्ष 1929 में प्रकाशित किया था। उत्तर-पूर्वी भारत के बांसों का संक्षिप्त विवरण क्रमशः एन. एल. बोर ने वर्ष 1940 में एवं एच. बी. नैथानि ने वर्ष 2008 में प्रकाशित किया था। आर्न बर्जर, 1999 के एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर में बांसों के लगभग 70 वंश व लगभग 1575 प्रजातियाँ उष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण एवं उच्च पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, बड़ापानी परिसर में बांसों की लगभग तीस प्रजातियाँ यहाँ के बम्बूसिटम व अन्य उपयुक्त स्थानो में सरंक्षित एवं विस्तारित है। यहाँ के कुछ प्रमुख बांसों में *बम्बुसा एफिनिस* मुनरो, *बम्बुसा एल्मटेमशी* एच. बी. नैथानि, *बम्बुसा बलकुआ* रॉक्सबर्घ, बम्बुसा बम्बुस (एल.) वास, बम्बुसा जयन्तियाना आर. बी. मजुमदार, बम्बुसा मल्टीप्लेक्स (लाउर) रियूस एक्स. साल्ट. एफ., *बम्बुसा नागालेंडीयाना* एच. बी. नैथानि, *बम्बुसा न्यूटेन्स* वाल व् मुनरो, *बम्बुसा पैलिडा* मुनरो, *बम्बुसा पोलीमार्फा* मुनरो, *बम्बुसा टुल्डा* रोक्सबर्घ, *बम्बुसा वुल्गेरिस* स्चेर्ड एक्स. जे. सी. वेंडल, *बम्बुसा वेंट्रीकोसा* एम. सी. क्लूर, *डेंड्रोकैलेमस हुकेरी* मुनरो, *डेंड्रोकैलेमस लेटीफ्लोरस* मुनरो, *डेंड्रोकैलेमस हैमिल्टोनई* नीस आर्न. एक्स मुनरो, *डेंड्रोकैलेमस स्ट्रीकटस* (रोक्सबर्घ) नीस, *मैलोकाना बैक्कीफेरा* (रोक्सबर्घ) कुर्ज, *फिल्लोस्टेकस मननि* गैम्बल तथा *साइजोस्टेचियम डूल्लूआ* (गैम्बल) आर. बी. मजुमदार आदि है।

बांसों की विविध उपयोगिता के कारण इसे गरीबों की लकड़ी " पुअर मैन्स टिम्बर" भी कहा जाता है । बांसों के प्रांकुरो का अचार, सब्जी व अनेकानेक व्यंजन भी उत्तर-पूर्वी भारत में बहुत लोकप्रिय है। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों की जलवायु बांसों की खेती के लिए बहुत ही उत्कृष्ट एवं अनुकूल है। यदि यहाँ पर उगने वाली प्रजातियों एवं समस्थानिक प्रजातियों का समुचित ढंग से प्रबंधन, रोपण एवं विस्तारण किया

जाता है तो उत्तर-पूर्व निसन्देह निकट भविष्य में बांसों के अपार उत्पादन का वैश्विक गढ़ बनेगा एवं इसके साथ ही यह यहाँ के स्थानीय लोगों की आमदनी तथा देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने वाले एक प्रमुख श्रोत के रूप में उभरेगा।

चित्र: 1. *बम्बुसा जयन्तियाना* आर. बी. मजुमदार, **2.** *डेंड्रोकैलेमस हुकेरी* मुनरो **3.** *बम्बुसा बलकुआ* रोक्सबर्ग **4.** *बम्बुसा टुल्डा* रोक्सबर्ग **5.** *बम्बुसा वुल्गेरिस* स्चेर्ड एक्स. जे. सी. वेंडल **6.** *फिल्लोस्टेकस मननि* गैम्बल

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 05-05 (2024)

कैरियोफिलेसी : सौंदर्य, उपयोगिता और अनुकूलन की एक वानस्पतिक टेपेस्ट्री

सिमरजीत कौर[1], छाया देओरी[1], विजय[1], डेविड एल. बियते[1] एवं उमा शंकर[2]

[1] भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्र केंद्र, शिलांग
[2] उत्तर-पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग

कैरियोफिलेसी एक सुप्रसिद्ध गुलाबी और गहरे लाल रंग के फूलों वाले पौधों का विविध कुल है जिसमें लगभग 90 वंश और 2,500 से अधिक जड़ी-बूटी वाले पौधों की प्रजातियां शामिल हैं। इस परिवार का नाम प्रसिद्ध गहरे लाल रंग के फूल (डायन्थस) से मिला है, जो कि पूर्व-लिनियन काल के दौरान कैरियोफिलस के नाम से लोकप्रिय था। इस कुल के पौधों का जो कि अपने आकर्षक फूलों के लिए प्रसिद्ध हैं, पुष्प-सज्जा और मालाओं में उपयोग का एक समृद्ध इतिहास रहा है।

यह कुल अपनी घासीय प्रकृति विपरीत पत्तियों और मुक्त पंखुड़ियों वाले फूलों के लिए जाना जाता है जबकि सेलीन और डायन्थस की कुछ प्रजातियाँ कभी-कभी विशेष रूप से शुष्क या चट्टानी आवासों में झाड़ीदार विकास प्रतिमान का अनुकरण भी करती हैं। इस कुल की एकमात्र प्रजाति जो एक छोटे पेड़ के रूप में विकसित होती है, वह *सैंक्टैम्ब्रोसिया मनिकाटा* (स्कॉट्सब) स्कॉट्सब है तथा यह चिली के तट से दूर-सुदूर 'सैन एम्ब्रोसिया' द्वीप के लिए स्थानिक है। इस परिवार के पौधों में ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों से लेकर शुष्क रेगिस्तान तक विभिन्न प्रकार के आवासों के लिए अनुकूलन क्षमता होती है। ऐसा माना जाता है कि इस कुल की उत्पत्ति उत्तरी गोलार्ध में हुई है और समशीतोष्ण जलवायु में इसकी सबसे अधिक विविधता पायी जाती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इस कुल के पौधों की प्रजातियों की उपलब्धता नगण्य है, लेकिन यह काफी आश्चर्यजनक है कि एकेंथोफिलम जैसी प्रजातियां मरुद्भिद् स्थितियों में जीवित रह सकती हैं। इसके अलावा, *एरेमोगोन ब्रायोफिला* (फर्नाल्ड) पुसलकर और डी.के. सिंह, उन तीन संवहनी पौधों में से एक है जो माउंट एवरेस्ट की ऊपरी ढलानों पर 6,180 मीटर की ऊंचाई पर अत्यधिक ठंडे तापमान में भी जीवित रह सकते हैं। अंटार्कटिक पर्लवॉर्ट, *कोलोबेन्थस क्वेटेन्सिस* (कुंथ) बार्टल, कठोर परिस्थितियों के बावजूद अंटार्कटिक सर्कल के दक्षिण में अत्यधिक वृद्धि करता है। यह अंटार्कटिक में पाए जाने वाले आवृतबीजी पौधों में से एक है और इसे दुनिया का सबसे दक्षिणी क्षेत्र का द्विबीजपत्री माना जाता है। जब हम इस कुल के पौधों के आर्थिक महत्व के बारे में बात करते है, तो कार्नेशन्स (डायन्थस) और बेबी ब्रीथ (जिप्सोफिला) सहित कुल की बहुत सी प्रजातियों की उनके सजावटी मूल्य के लिए विश्व भर में खेती की जाती है। गुलदस्ते और फूलों की सजावट में उनके सौंदर्यात्मक गुण के अलावा, कुछ प्रजातियां पकाकर खाने में प्रयोग होती है, और कुछ औषधीय लाभ भी प्रदान करती हैं, उदाहरण के लिए, कई आदिवासी लोगो द्वारा चिकवीड (*स्टेलारिया मीडिया* लिनिअस विलरस) की पत्तियों को पकाकर तथा सलाद के रूप में कच्चा भी खाया जाता है। उदाहरण के लिए, *सेलीन वल्गेरिस* (मोएंक) गार्सके, की जड़ों का उपयोग खांसी और श्वसन संबंधी बीमारियों को कम करने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर कैरियोफ़ायलेसी की कई प्रजातियां खरपतवार प्रकृति प्रदर्शित करती हैं और कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक आक्रामक हो सकती हैं, उदहारण : इस्टीकी चिकवीड (*सेरास्टियम ग्लोमेरेटम* थुइलर) और कॉर्न स्पुर्री (*स्पर्गुला अर्वेन्सिस* लिनिअस) आमतौर पर अप्राप्य कृषि क्षेत्रों में आक्रामक रूप से बढ़ता है और कृषि पौधों को भारी हानि पहूँचाता है।

निष्कर्ष : जैसे-जैसे हम कैरियोफिलेसी के विविध आवासों का पता लगाते हैं और उनके विविध उपयोगों की खोज करते हैं, हम उन जटिल संबंधों के प्रति अपनी गहरी सराहना प्राप्त करते हैं, जो इस ग्रह पर प्रतिकूल वातावरण में भी अपने जीवन को बनाए रखते हैं। कैरियोफिलेसी कुल वनस्पति जगत के चमत्कारों की एक मनोरम झलक पेश करता है।

स्पेर्गुला आरवेंसिस एल. द्वारा कृषि क्षेत्र पर कब्ज़ा

स्पेर्गुला आरवेंसिस एल.

सेरासटियम ग्लोमेरेटम थुईलर

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 06-07 (2024)

हेबेनारिया एक्यूइफ़ेरा वाल. एक्स. लिंड्ल. (ऑर्किडेसी) : भारत के मेघालय राज्य का एक सशक्त जंगली सजावटी आर्किड

वाई. महेश, हरेकृष्ण स्वैन, आर. कोट्टईमुथु, विजय एवं एन. ऑडियो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

प्रस्तावना : लिनिअस से पहले भी वनस्पतिशास्त्री भारतीय ऑर्किड की ओर आकर्षित थे और इन दिलचस्प पौधों पर वर्गीकरण अध्ययन का इतिहास पूरी तरह से भारतीय व्यवस्थित वनस्पति विज्ञान के समान है। सजावटी मूल्य वाले जंगली ऑर्किड को संरक्षित करने का मुख्य उद्देश्य उनकी रक्षा करना और उन्हें अनुकूल आवासों में पुन: प्रस्तुत करने के लिए बढ़ाना और उनके व्यावसायिक दोहन की संभावनाओं का पता लगाना है। ऑर्किड को प्रतिकूल वातावरण से नई जलवायु-संरक्षित साइटों पर स्थानांतरित करने के लिए कृत्रिम सहायता की आवश्यकता होती है। यह संभावना है कि पौधों के किसी भी अन्य समूह की तुलना में ऑर्किड, जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हैं और यदि पर्याप्त संरक्षण रणनीतियों को नहीं अपनाया गया तो विलुप्त होने का खतरा है। प्रस्तुत पेपर ऐसे ही एक दुर्लभ ऑर्किड के महत्व पर प्रकाश डालता है जिसमें अपार बागवानी क्षमता है।

ऑर्किड विविधता पर एक नज़र : ऑर्किडेसी परिवार में वैश्विक स्तर पर और भारत में 800-1000 वंश के तहत 20000-30000 प्रजातियां, 155 वंश के तहत 1268 वर्गक (1239 प्रजातियां, 29 अन्तःजातीय वर्गक) शामिल है। समशीतोष्ण हिमालय को अपना प्राकृतिक घर मानने वाली 400 स्थानिक प्रजातियाँ (सिंह और अन्य, 2020)। अंटार्कटिका को छोड़कर दुनिया में ऑर्किड का वितरण आर्द्र उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय तक होता है। अधिकांश प्रजातियाँ सुंदर फूलों के साथ अत्यधिक सजावटी होती हैं और अन्य एंजियोस्पर्मों की तुलना में फूलों का जीवनकाल लंबा होता है। उत्तर पूर्व भारत में 165 वंश के अंतर्गत 900 प्रजातियाँ हैं, जो भारत में कुल आर्किड प्रजातियों का 72.8% प्रतिनिधित्व करती हैं। जीनस *हेबेनारिया वाइल्ड*। सीए के साथ सबसे बड़ी स्थलीय प्रजातियों में से एक है। दुनिया में 898 प्रजातियाँ और ब्राजील, दक्षिणी और मध्य अफ्रीका और पूर्वी एशिया में विविधता के केंद्रों के साथ उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वितरित (कुर्जवील और वेबर 1992, प्रसाद और वेणु 2015, गोवार्ट्स और अन्य, 2020)। भारत में, जीनस का प्रतिनिधित्व 64 प्रजातियों (सिंह एंड अल., 2020) द्वारा किया जाता है, इनमें से कई प्रजातियां 1000 मीटर से 2000 मीटर के बीच ऊंचाई वाले आवासों में उगाई जाती हैं। भारत में 64 प्रजातियों में से केवल 2 प्रजातियाँ, *हेबेनारिया एक्यूइफ़ेरा* वॉल पूर्व लिंड्ल. और *एच. मार्जिनटा* कोलब्र पीले फूल हों. मेघालय में हेबेनारिया की दस प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जैसे, *एच. एक्यूइफ़ेरा* वॉल एक्स लिंडल, *एच. एरिएटिना* हुक. एफ., *एच. डेंटाटा* (स्व.) शूल्ट., *एच. डिजिटाटा* लिंड्ल., *एच. खसियाना* हूक. एफ., *एच. एनसिफोलिया* लिंडल., *एच. इंटरमीडिया* डी. डॉन, *एच. पेंटलिंगियाना* क्रेंजल., *एच. स्टेनोपेटाला* लिंडल. और *एच. रेनिफोर्मिस* हूक.एफ.।

हाल ही में, पूर्वी खासी हिल्स और जैंतिया हिल्स के क्षेत्र दौरे के दौरान, शेरलोंग (बगीचे के कर्मचारी) द्वारा घास के मैदानों और खुली घास की ढलानों में तीखे नुकीले ओष्ठक तथा एक सुनहरे पीले फूल वाला हेबेनारिया उगाया गया था। जिज्ञासा के कारण, उन्होंने कंदीय जड़ों सहित एक नमूना एकत्र किया। बाद में हमने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग प्रायोगिक उद्यान के घास के मैदान के वातावरण में इसे पेश किया और यह नए आवास में सफलतापूर्वक स्थापित हो गया (चित्र 1)। इसके अलावा, हमने देखा कि फूल 20-30 दिनों की अवधि तक ताज़ा रहते हैं। प्रासंगिक साहित्य के परामर्श और फूलों की आलोचनात्मक जांच के बाद, लेखकों ने इसकी पहचान *हेबेनारिया एक्यूइफेरा* के रूप में की, जो चीन, इंडो-चीन और उत्तर पूर्व भारत में वितरित एक दुर्लभ सुनहरे पीले फूल वाला आर्किड है। इस प्रजाति को मूल रूप से तवॉय, म्यांमार से डब्ल्यू. गोमेज़ द्वारा एकत्र किया गया था और नाथनियल वालिच ने *हेबेनारिया एक्यूइफ़ेरा* नाम प्रस्तावित किया था, लेकिन बिना किसी वैध विवरण के। बाद में 1935 में जॉन लिंडले ने नाम को मान्य किया। *हेबेनारिया एक्यूइफ़ेरा* वाल. के बाद लिंड्ल. यह एक छोटा स्थलीय कंदीय आर्किड है जो अपने नुकीले नुकीले होंठों वाले आकर्षक सुनहरे पीले फूलों के कारण आसानी से क्षेत्र में पहचाना जा सकता है।

सजावटी महत्व : फूलों की मांग में निरंतर वृद्धि के परिणामस्वरूप फूलों की खेती कृषि में एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक उद्यम बन गई है। परिणामस्वरूप, वाणिज्यिक फूलों की खेती एक उच्च तकनीक उद्योग बन गया है जो विनियमित जलवायु परिस्थितियों के साथ ग्रीनहाउस

के भीतर संचालित होता है। फूलों की खेती के बाजार में दो अलग-अलग प्रकार के ऑर्किड की मांग है। शादियों, त्योहारों और कार्यालयों में सजावट के रूप में उपयोग के लिए फूलों को काटें, साथ ही घरों, पिछवाड़े और वनस्पति उद्यानों में उनके सौंदर्य मूल्य के लिए गमलों में या लगाए गए पौधों का उपयोग करें। बाहरी सजावट के लिए सबसे अधिक मांग वाले पौधे वे हैं जो गमलों में और वनस्पति उद्यान में हेजेज के किनारे लगाए जाते हैं। स्थलीय जीनस हेबेनारिया के सुंदर और टिकाऊ फूल इसे अलग बनाते हैं। वे अधिकतर तीन रंगों में उपलब्ध हैं: सफेद, हरा और पीला। पर्यटन में वृद्धि के कारण संस्थागत, आवासीय और वनस्पति उद्यानों में जंगली आर्किड प्रजातियों की भारी मांग है। व्यावसायिक स्तर पर अच्छी गुणवत्ता वाले ऑर्किड की खेती के लिए शोधकर्ताओं, किसानों और नर्सरी के बीच उपयुक्त वैज्ञानिक समझ, उचित पौधे सामग्री और पद्धतियों की कमी के कारण भारत के ऑर्किड उत्पादन में बाधा आती है। आर्द्रता, स्वीकार्य तापमान और परिवेश प्रकाश ऑर्किड के विकास के लिए आदर्श स्थितियाँ हैं।

निष्कर्ष : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग परिसर और नेशनल ऑर्किडेरियम 400 से अधिक ऑर्किड प्रजातियों (एपिफाइटिक और ग्राउंड दोनों) के लिए उत्कृष्ट पूर्व-स्थाने संरक्षण केंद्र हैं। *हेबेनारिया एक्यूफेरा* को पूर्वी खासी पहाड़ियों के घास के मैदानों से एकत्र किया गया और पहली बार परिसर में घास के मैदान में पेश किया गया। यह अच्छी तरह स्थापित हो चुका है. इसी प्रकार, हम विदेशी प्रजातियों के बजाय उत्तर पूर्व भारत के वनस्पति उद्यानों और संरक्षकों में संभावित जंगली सजावटी ऑर्किड पेश कर सकते हैं, यह स्थानीय विलुप्त होने से इसके संरक्षण को बढ़ावा दे सकता है। सुंदर फूलों वाले दुर्लभ ऑर्किड पर ध्यान केंद्रित करने के साथ जंगली ऑर्किड के संरक्षण के लिए कई अवसर और संभावनाएं हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से, हम जंगली ऑर्किड के आनुवंशिक संसाधनों को संरक्षित कर सकते हैं और इच्छुक शोधकर्ताओं को अनुसंधान उद्देश्य के लिए सामग्री भी प्रदान कर सकते हैं। हम छात्रों, शोधकर्ताओं, प्रकृति प्रेमियों के बीच जंगली आर्किड सौंदर्य, उनकी दुर्लभता और महत्व के बारे में जागरूकता भी पैदा कर सकते हैं।

चित्र 1. *हेबेनारिया एक्यूफ़ेरा* वाल. एक्स. लिंड्ल. A. बी. एस. आई, ई. आर. सी. गार्डन प्राकृतिक वास में पौधा; B. कंदयुक्त जड़ों वाला पौधा; C. पुष्पक्रम; D. फूल.

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 08-10 (2024)

किताम पक्षी अभयारण्य के पक्षी-सहयोगी पादप

बसंत कुमार सिंह, मोनालिसा डे एवं राजीब गोगोई

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सिक्किम हिमालय क्षेत्रीय केंद्र, गान्तोक, सिक्किम

सिक्किम,भारत का दूसरा सबसे छोटा राज्य है जो भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के मात्र 1 प्रतिशत से भी कम हिस्से में फैला हुआ है लेकिन अपनी भौगोलिक अनुकूलता और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण भारत के कुल 27 प्रतिशत पुष्पीय पौधों का आवास स्थल है। सिर्फ इतना ही नहीं इस राज्य में इसके कुल क्षेत्रफल का 82 प्रतिशत हिस्सा वनों से आच्छादित है जिनमें जैव विविधता के संरक्षण हेतु कुल सात वन्यजीव अभयारण्य, एक राष्ट्रीय उद्यान, एक संरक्षण रिजर्व और एक जीवमंडल, जिसका भी कुल क्षेत्रफल सिक्किम के क्षेत्रफल का लगभग 47 प्रतिशत है। जंगलों की इस सघनता और जीवविविधता का मुख्य कारण यहाँ के पहाड़ो की खड़ी ढाल जो एक सीमित दूरी में ही समुद्र तल से 300 मीटर से बढ़कर 8586 मीटर तक पहुंच जाती है। साथ ही हिमालय के इस भूभाग में सलाना औसतन 200-500 सेंटीमीटर बारिस होती है। दो मुख्य नदियाँ, तिस्ता और रंगीत के साथ ढेरो सहायक नदियाँ और जलप्रपात एवं उनसे बने झील और जलाशय यहाँ की धरती को उर्वरक बनाते हैं। सिक्किम की तराई की उष्णकटिबंधीय घाटियाँ, खासकर 1000 मीटर के नीचे पादप और वन्यजीवों की विविधता का हॉटस्पॉट माना जाता है। यद्यपि, इन जंगलों पर मानवजनित गतिविधियों का काफी प्रभाव है। कम ऊंचाई वाले भूभाग ज्यादातर कृषि, उद्योग, नहर, रास्तों और मानव निवास स्थान के रूप में प्रयोग होते हैं जो प्राकृतिक आवास स्थल के विखंडन का कारण बनते हैं। समय के साथ बढ़ते मानवजनित विकास कार्यों, नए रास्तों के निर्माण तथा पुराने रास्तों के विस्तार, नगरों और गांवों के विस्तार और उद्योगों की स्थापना ने यहाँ के जंगलों की परिधि को सीमित कर दिया है।अतएव वर्तमान परिस्थिति में सिक्किम में संरक्षित वनों का बहुत महत्व है।

किताम पक्षी अभयारण्य सिक्किम में अवस्थित सात अभ्यारण्यों में से एक मात्र पक्षी अभयारण्य है जो सिक्किम के दक्षिण में नामची जिले में अवस्थित है। कितास आरक्षित वन को इसके पारिस्थितिकी, वन्य, पादप और प्राकृतिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए दिनांक 3 फरवरी 2005 के राजपत्र अधिसूचना संख्या 39/एफइडब्लूएमएफ/2005 द्वारा कितास पक्षी अभयारण्य का दर्जा दिया गया। यह अभयारण्य 27° 06' से लेकर 27° 07' उत्तरी अक्षांश और 88° 20' से लेकर 88° 22' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है और 6 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र तथा 10 किलोमीटर की परिधि में फैला हुआ है और समुद्र तल से 320 से 875 मीटर की उच्चतांश रेंज के उष्णकटिबंधीय पारिस्थितकीय क्षेत्र में अवस्थित है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह अभयारण्य काफी महत्वपूर्ण है जो दक्षिण में महान रंगीत नदी, जो की सिक्किम राज्य को पश्चिम बंगाल से भी अलग करती है, उत्तर में नामची-मानपुर सड़क, पश्चिम में गोमखोला और पूर्व में मानपुर नदी द्वारा घिरा हुआ है।

पिछले दो सालों के गहन सर्वेक्षण में यहाँ की पक्षी विविधता और वनस्पति विविधता में काफी सामंजस्य पाया गया है। यहाँ का संतुलित वास्तुतंत्र उद्भिदो और पक्षियों के लिए एक उत्तम वास स्थल प्रदान करता है। किताम पक्षी अभयारण्य दो नदियों के बीच में बसा जंगल का क्षेत्र है जो शाल और चिर वनों का एक विशिष्ट संगम है जिसमे राष्ट्रीय पक्षी मयूर विशाल संख्या में रहते हैं। जहाँ पक्षियों के आवास के लिए आवश्यक सारे महत्वपूर्ण कारक मौजूद हैं। नदियों के संलग्न क्षेत्रों में हरित प्रजातियों के फलदार और घने वृक्षों की भरमार है जो पक्षियों के वास स्थल और भोजन के लिए आवश्यक हैं। वहीं अभयारण्य के दक्षिणी और पश्चिमी प्रान्त के पहाड़ी ढालों पर साल, चिर और खजूर की भरमार है जो पक्षियों के बसेरे का सर्वोत्तम आशियाना है। यहाँ पक्षियों में भारतीय मयूर, कालिज चकोर लाल जंगल मुर्गी, सामान्य पहाड़ी तीतर, महान पहाड़ी बसंता, सुनहरा गला बसंता, हिमालयी सुनहरी पीठ वाला कठ फोड़वा, भारतीय चितकबरा धनेश प्रमुख हैं।

इस अभयारण्य में स्तनपायी में तेंदुआ, असमी बानर, लघुपुच्छा बानर, भोंकू हिरन, जंगली शूकर, चीनी साल, हिमालयी अकिरीटी सेही, हिमालयी मुसंग आदि और सरीसृप में भारतीय शैल, अजगर सामान्य हैं।

पादप जगत में मुख्य रूप से यहाँ जंगली खजूर, साल, जामुन, आम, जिओला, जंगली आम, पनियाला, खरपत, माल-कांगनी, अकोल, खट्टाकरंट झाड़ी, सफ़ेद-बेरीझाड़ी, इमली, नीम, बकायन, शहतूत, बेर , भारतीय मक्खन वृक्ष, ब्यूटी बेरीवृक्ष इत्यादि जैसे फलदार बृक्षों की भरमार है।

इसके अलावे भी यहाँ पाइनस रॉक्सबर्घी, टेट्रामेलिस न्यूडिफ्लोरा, एरिथ्रिना स्ट्रिक्टा, लैगरस्ट्रोमिया पार्विफ्लोरा, टूना सिलियाटा, फिकस सेमी कॉर्डेटा, दुआ बांगा ग्रैंडिफ्लोरा, स्टर्क्युलिया विलोसा, टर्मिनलिया एलिप्टिका, टर्मिनलिया मायरियोकार्पा इत्यादि वृक्ष बहुलता में पाए जाते है।

काली गर्दन वाला ओरिओल तथा कॉपर स्मिथ बारबेट कोलैनिया कोरोमंडलिका, भारतीय मैना तथा जंगल बैबलर को अलांजियम आल्पीनम पर और उसी तरह दूसरी अलग – अलग प्रजातियों की पक्षियों को अलग – अलग पेड़ो पर भोजन करते या वास करते देखा जा सकता है।

कितम अभयारण्य में पाए जाने वाले कुछ पक्षी सहयोगी पादपों के नाम और उनके उपयोग

क्रम संख्या	पक्षी सहयोगी पादप के नाम	कुल	उपयोग
1	अलांजियम एल्पाइनम	एलैन्जिएसी	फल खाया जाता है।
2	अपोरोसा ऑक्टेंड्रॉ	यूफोरबिएसी	फल खाया जाता है।
3	बेकॉरीया रैमीफ्लोरा	यूफोरबिएसी	फल खाया जाता है।
4	कैलिकार्पा आर्बोरिया	भर्बीनेसी	फल खाया जाता है।
5	डिप्लोनेमा ब्यूटीरेसिया	सैपोटेसी	फल खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
6	दुरन्ता इरेक्टा	भर्बीनेसी	फल खाया जाता है।
7	एरीथ्रीना स्ट्रिक्टा	फैबेसी	नेक्टर खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
8	गेरूगा पिनेटा	बरसरेसी	फल खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
9	लेनिया कोरोमंडेलिका	ऐनाकार्डीएसी	फल और फूल खाया जाता है।
10	लैन्टाना कैमरा	भर्बीनेसी	नेक्टर और फूल खाया जाता है।
11	मैकेरेंगा पेल्टेटा	यूफोरबिएसी	फल खाया जाता है।
12	मेलिया अजेदराक	मेलिएसी	फल खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
13	मोरस इंडिका	मोरेसी	फल खाया जाता है।
14	फीनिक्स लौरीरोइ	एरीकेसी	फल खाया जाता है तथा घोसला बनाने के लिए प्रयोग होता है।
15	पाइनस रॉक्सबर्गियाइ	पाईनेसी	घोसला बनाने के लिए प्रयोग होता है।
16	संबुकस केन्नाडेंसिस	कैप्रीफोलिएसी	फल खाया जाता है।
17	सेंटेलम एलबम	सेंटालेसी	फल खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
18	टेट्रामेलिस नुडीफ्लोरा	टेट्रामिलेसि	फल खाया जाता है तथा घोसला और बसेरा हेतु प्रयोग में लाया जाता है।
19	ट्रेमा ओरिंटेल	केन्नाबेसी	फल खाया जाता है।
20	उडफर्डीआ फ्रूटीकोसा	लाइथ्रेसी	नेक्टर और फल खाया जाता है।
21	पोलीगोनम मोली	पॉलीगोनेसी	फल खाया जाता है।

पक्षी अभयारण्य घोषित होने के बाद यहाँ पक्षी प्रेमियों और पर्यटकों की गतिविधियाँ बढ़ी हैं। इससे यहाँ के स्थानीय लोगों में जीविका की संभावनाएं भी बढ़ी है। वन विभाग ने भी पर्यटकों की सुविधा के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठायें हैं। लेकिन साथ ही साथ अभयारण्य में मानवीय हस्तक्षेप और उनसे जुड़े नकारात्मक प्रभावों को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। ऊपरी और निचली किताम, मानपुर, मझितार, गोम आदि गांव कितम अभयारण्य से बिलकुल सटे होने के चलते प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यहाँ की जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं। साथ ही साथ मल्ली से जोरथांग को जाने वाली मल्ली – नया बाजार सड़क और मल्ली से नामची को जोड़ने वाली राष्ट्रीय राजमार्ग 210, कितम अभयारण्य के ठीक बीच से होकर गुजरती हैं। ये दोनों सड़कें यातायात की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं और यहाँ हमेशा वाहनों की गति-विधि रहती है जिसका सीधा प्रभाव वन्यजीवों, खासकर पक्षियों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। ग्रीष्म ऋतु में दावानल और वर्षा ऋतु में भूस्खलन की संभावनाएं बनी रहती है। इन दोनों परिस्थितियों में जंगल और उसमें रह रहे वन्यजीवों को काफी नुकसान होता है और पारिस्थितिकी तंत्र भी असंतुलित हो जाता है। कितम पक्षी अभयारण्य की विशेषताओं और महत्व को ध्यान में रखते हुए, सिक्किम राज्य के निचले क्षेत्र में अवस्थित इस एकमात्र संरक्षित भूभाग को आने वाली पीढ़ियों के लिए बचाने की जरूरत है और इस दिशा में संस्थाओं के द्वारा अधिक ठोस कदम उठाने और प्रबंधन योजना को उसके अनुरूप ढालने की जरुरत है।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 11-12 (2024)

हरियाली होगी तो ठंडक भी आएगी

वैशाली गौतम एवं एस.के. सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र, देहरादून

आज कल चिलचिलाती धूप और गरम वातावरण के कारण घर के अंदर रहना भी मुश्किल हो गया है। ऐसे में घर में ठंडक बनाये रखने के लिए लोग कूलर या ऐसी चलाते हैं परन्तु यह सेहत के लिए नुकसानदायक साबित हो सकता है, इसलिए प्राकृतिक तरीके से घर को ठंडा बनाये रखने के लिए इंडोर प्लांट का विकल्प चुन सकते हैं । ये पौधे वातावरण में मौजूद टॉक्सिन्स को दूर करके हवा को शुद्ध करते हैं और न केवल घर में ठंडक लाते हैं, बल्कि आपको मानसिक शांति और ताज़गी का अनुभव भी कराते हैं। पौधों में होने वाली वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया कमरे को ठंडा रखने में मददगार होती है। साथ ही ये पौधे हानिकारक विषैली गैसों को सोखकर ऑक्सीजन छोड़ते हैं। ये पौधे आँखों को हरा-भरा सुकून देते हैं और साथ ही में घर की खूबसूरती को भी कई गुना बढ़ा देते हैं।

स्पाइडर प्लांट (*क्लोरोफाइटम कोमोसम*) **:** यह ऐस्पेरेगेसी कुल का पौधा है। इस पौधे को आप घर के अंदर आसानी से लगा सकते हैं। यह पौधा हवा में मौजूद हानिकारक तत्वों को खींच लेता है जिससे हवा शुद्ध हो जाती है। इसकी ख़ास बात यह है की इसे ज़्यादा देखभाल की ज़रुरत नहीं होती है।

घृतकुमारी (*एलो वेरा*) **:** यह एस्फोडेलेसी कुल का पौधा है। ढेर सारे औषधीय गुण पाए जाने के कारण यह पौधा स्वास्थय के लिए बेहद लाभकारी होता है। इसको कम धूप और पानी की आवशयक्ता होती है, जिस कारण इसे घर के अंदर आसानी से लगाया जा सकता है। यह वातावरण में मौजूद टॉक्सिन्स को दूर करके हवा को शुद्ध बनाता है और वातावरण में नमी छोड़कर कमरे को ठंडा करता है।

रबर प्लांट (*फाइकस इलास्टिका*) **:** यह मोरेसी कुल का पौधा है। यह पौधा आसानी से वातावरण में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर लेता है और ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ा देता है जिससे घर में मौजूद गर्मी स्वतः कम होने लगती है। रबर प्लांट को नियमित पानी देने की भी ज़रुरत नहीं होती है। हालांकि इसे थोड़े समय के लिए धूप में ज़रूर रखना चाहिए।

स्नेक प्लांट (*ड्रेसिना ट्राइफैसीआटा*) **:** यह ऐस्पेरेगेसी कुल का पौधा है। यह पौधा घर के अंदर लगाने के लिए सबसे अच्छा होता है। यह रात के समय ऑक्सीजन छोड़ता है इसलिए इसे बैडरूम में भी लगाया जा सकता है। यह घर की सजावट को भी बढ़ाता है। इसलिए इसे घर के एक कोने में लगाकर ख़ूबसूरत लुक दिया जा सकता है।

एरेका पाम (*डिप्सिस लुटेसेंस*) **:** यह ऐरेकेसी कुल का पौधा है। यह सबसे लोकप्रिय हाउस प्लांट्स में से एक है। यह देखने में भी काफी खूबसूरत लगता है। इसकी लम्बी पतली पत्तियां हवा को ठंडा और नमी बनाये रखने में मदद करती हैं। यह हवा में मौजूद विषैले पदार्थों को दूर कर ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ा देता है।

मनी प्लांट (*एपीप्रेम्नम ऑरियम*) **:** यह ऐरेसी कुल का पौधा है। कम रोशनी में पनपने के कारण मनी प्लांट को लोग घर में रखना पसंद करते हैं। यह वातावरण को ठंडा रखता है और हवा में मौजूद अशुद्धियों को फ़िल्टर कर देता है जिससे घर में ताज़ी हवा का संचार बढ़ जाता है। इसे हैंगिंग पॉट में लगाकर घर की खूबसूरती भी बढ़ाई जा सकती है।

स्विस चीज़ प्लांट (*मॉन्स्टेरा डेलिसियोसा*) **:** यह ऐरेसी कुल का पौधा है। यह शानदार उष्णकटिबंधीय पौधा किसी भी घर की सजावट पर एक उत्साहिक प्रभाव छोड़ता है। यह घर की प्रसिद्धि और पहचान क्षेत्र के लिए आदर्श है। यह पौधा हवा से बेंजीन, फॉर्मेल्डिहाइड जैसे प्रदूषकों और विषाक्त पदार्थों को कम करने में प्रभावी माना जाता है।

फिलोडेन्ड्रान (*थौमाटोफिलम बिपिनाटिफ़िडम*) **:** यह ऐरेसी कुल का पौधा है। किसी भी घर के लिए एक सदाबहार पसंदीदा पौधा विकल्प फिलोडेन्ड्रान है। यह एक बेहतरीन मिलनसार पौधा है इसलिए इसकी देखभाल करना बेहद आसान है। यह हवा को शुद्ध करने वाले पौधों में से एक है।

जेड प्लांट (*क्रसुला ओवेटा*) **:** यह क्रैसुलेसी कुल का पौधा है। यह न केवल दिखने में आकर्षक पौधा है, बल्कि इसके कई फायदे भी हैं। यह घर के अंदर की हवा को बेहतर बनाने के साथ रात की अच्छी नींद में भी मदद करता है। यह क्रैसुलेसिअन एसिड मेटाबोलिज्म का पालन करता है, जिससे यह पौधा रात में अपने छोटे छिद्र खोलता है, जिससे यह कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करता है।

पीस लिली (*स्पैथिफिलम वालिसी*) **:** यह ऐरेसी कुल का पौधा है। पीस लिली बहुत आसानी से लग जाने वाला पौधा है। यह घर की प्रदूषित हवाओं के लिए एयर प्यूरिफायर माना जाता है। यह जहरीले गैसों को अवशोषित करने में सक्षम है। कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड और हवा में मौजूद सूक्ष्म कणों को अवशोषित कर लेता है।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 13-13 (2024)

इंद्रायण

संजय मिश्रा, पी. हरिकृष्णा, रवि प्रसाद एवं विनोद मैना

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

कुकुमिस ट्राइगोनसः फल

भारतवर्ष में इंद्रायण का प्रयोग अत्यंत प्राचीनकाल से किया जाता रहा है। चरक व सुश्रुत-संहिता में इसका उल्लेख कई स्थानों पर प्राप्त होता है। इंद्रायण की समस्त भारतवर्ष में विशेषतः बालु मिश्रित भूमि में स्वयंजात व वन्यज बेलें पाई जाती हैं। आयुर्वेद में तीन प्रकार के इंद्रायण का उल्लेख मिलता है। 1. बड़ी इंद्रायण 2. छोटी इंद्रायण 3. लाल इंद्रायण। तीनों प्रकार के इंद्रायण कुकरबिटेसी कुल के सदस्य हैं।

बड़ी इंद्रायण : इसका वानस्पतिक नाम "सिट्रुलस कोलोसिंथस" है। कोलोसिंथ या कड़वा सेब, जिसे बड़ी इंद्रायण के नाम से जानते हैं। संस्कृत में चित्रफल इंद्रावारूणी, मराठी में कडु इंद्रावण, बांग्ला तथा गुजराती में इंद्रायण तथा लोकभाषाओं मे ईनारणी, गड़तुम्बा, गडूम्बा, पापड़, पिंदा आदि नामों से जाना जाता है। इसे अंग्रेजी में कॉलोसिंथ या बिटर ऐप्पल कहते हैं। बड़ी इंद्रायण मध्य, दक्षिण तथा पश्चिमोत्तर भारत, अरब, पश्चिम एशिया, अफ्रीका के उच्च भागों तथा भूमध्यसागर के देशों में भी पाई जाती है। इस पौधे की जड़े मोटी और फैली हुई होती हैं। इसके पत्ते चौड़े तथा विभाजित होते हैं जो कि 5-10 सेमी लंबे होते हैं। इसकी पत्तियों में 3-7 लोब होते है। इसकी पत्तियों के ऊपरी भाग का रंग गहरा हरा एवं निचली सतह का रंग हल्का पीला होता है। इसमें पीले रंग के नर व मादा पुष्प पाये जाते हैं तथा फल नारंगी के समान 4-10 सेमी व्यास के होते हैं। ये फल कच्ची अवस्था में हरे, तथा पकने पर पीले हो जाते हैं फलों पर बहुत सी श्वेत धारियाँ पायी जाती हैं। इसके बीज भूरे रंग के, चिकने चमकदार, लंबे, गोल तथा चपटे होते हैं। इस बेल का प्रत्येक भाग स्वाद में कड़वा होता है।

इसके फल के गूदे को सुखाकर औषधि के काम में लाते हैं। आयुर्वेद में इसे शीतल रेचक और गुल्म, पित्त, उदररोग, कफ, कुल तथा ज्वर को दूर करने में उपयोगी लिखा गया है। यह जलोदर पीलिया और मूत्र संबंधी व्याधियों में विशेष लाभकारी तथा श्वेतकुष्ठ, खाँसी, मंदाग्नि, रक्ताल्पता में भी उपयोगी कहा गया है। यूनानी औषधीय प्रणाली मतानुसार, इंद्रायण सूजन को उतारनेवाला, वायुनाशक तथा स्नायु संबंधी रोगों में, जैसे लकवा, मिरगी, अर्धकपारी, विस्मृति इत्यादि में लाभदायक है। यह तीव्र विरेचक तथा मरोड़ उत्पन्न करने वाला है, इसलिए दुर्बल व्यक्ति को इसे नहीं देना चाहिए। रासायनिक विश्लेषण में इसमें कुछ उपक्षार (ऐल्कलॉड) तथा कॉलोसिंथिन नामक एक ग्लूकोसाइड जो इस औषधि का मुख्य तत्व है, पाये गए हैं।

जंगली या छोटी इंद्रायण : इसका वानस्पतिक नाम "कुकुमिस ट्राइगोनस" है। इसे संस्कृत में एंद्री,चित्रा गावाक्षी, इन्द्रवारूणी आदि नाम से जाना जाता है। इसकी बेल और फल तीनों इंदायणों में सबसे छोटे होते हैं। छोटी इंद्रायण के फूल घंटे के आकार के गोल, पीले रंग के होते हैं। एकलिंगी नर और मादा पुष्प अलग-अलग होते हैं। इसके फल में भी कोलोसिंथिन से मिलते जुलते तत्व होते है। इसका हरा फल स्वाद में कड़वा अग्निवर्धक, स्वाद को सुधारनेवाला तथा कफ और पित्त के दोषों को दूर करने वाला होता है।

लाल इंद्रायण : इसका वानस्पतिक नाम "ट्राइकोजैंनथिस ट्राइकास्पिडाटा" है। इसे संस्कृत तथा बांग्ला में महाकाल कहते हैं। इसकी बेल लंबी तथा पत्ते दो से छः इंच के व्यास के त्रिकोण से सप्तकोण तक होते हैं। इसमें श्वेत रंग के नर व मादा पुष्प पाये जाते हैं। फल कच्ची अवस्था में नारंगी रंग के, किंतु पकने पर लाल तथा नारंगी धारियों वाले होते हैं। फल का गूदा हरापन लिए काला होता है तथा फल बहु बीजी होते हैं। इस पौधे की जड़े बहुत गहराई तक जाती हैं और इसमें गाँठें होती हैं। रासायनिक विश्लेषण में इसके फल के गूदे में कोलोसिंथिन से मिलता जुलता ट्राइकोजैनथिन नामक पदार्थ पाया गया है। लाल इंद्रायन भी तीव्र विरेचक है। आयुर्वेद में इसका प्रयोग श्वास एवं फेफड़े से संबधित रोगो के उपचार में किया जाता है।

सिट्रुलस कोलोसिंथसः क - बेल, ख - मादा पुष्प, ग – फल

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 14-17 (2024)

पर्णांगों में बीजाणु विविधता एवं वर्गीकरण में उनका महत्त्व और योगदान

लतिका सागरवाल, बृजेश कुमार एवं सुशील कुमार सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र – देहरादून 248195

सजीवों की दुनिया में, प्रत्येक जीवन के अपने उद्देश्य और लक्ष्य होते हैं। जिसमे मुख्यतः दो लक्ष्य होते हैं- अल्पकालिक लक्ष्य जो की किसी दिए गए पर्यावरण और परिस्थितिकी में खुद को बनाए रखना है और दीर्घकालिक लक्ष्य जिसमें जीनोम प्रतियां अगली पीढ़ी तक पहुंचाना है, दीर्घकालिक लक्ष्य तभी सफल होता है जब अल्पकालिक लक्ष्य पूरा हो जाता है।

बीजाणु वही साधन हैं जिनके द्वारा दीर्घकालिक जीवन के लक्ष्य प्राप्त किये जाते हैं। बीजाणु बैक्टीरिया, कवक और शैवाल सहित गैर-फूल वाले संवहनी पौधों की एकल-कोशिका वाली प्रजनन इकाई है। ये किसी अन्य कोशिका के साथ संलयन के बिना अस्तित्व में आने में सक्षम होती है या कह सकते हैं कि संबंधित जाति के प्रतिरूप विकसित करने की क्षमता रखती है।

पर्णांग अग्रणी संवहनी स्थलीय पौधे हैं जो बीजों के बजाय बीजाणुओं के माध्यम से प्रजनन करते हैं। पर्णांग, आवृतबीजी के बाद संवहनीय पौधों का दूसरा सबसे बड़ा समूह है।प्रजनन सम्बन्धी आवश्यकताओं के कारण प्रायः पर्णांग नमी एवं छायादार युक्त स्थानों में ही पाए जाते हैं पानी की एक हल्की परत इनके प्रजनन में सहायक होती है, इस वजह से प्रायः बरसात के दिनों में इनकी अच्छी वृद्धि देखी जाती है जिसके कारण इनको मानसून पादप के नाम से भी जाना जाता है| विश्व के लगभग 9% पर्णांग भारत में पाए जाते हैं जिनमें 1297 जातियां शामिल हैं, इनमें से 70 जातियां भारत के लिए स्थानिक हैं। भारत वर्ष में पर्णांग जातियां समशीतोष्ण,उपोष्ण एवं शीतोष्ण जलवायु वाले प्रदेशों में मुख्यत: पाए जाते हैं। भारत में पर्णांग प्रमुख रूप से हिमालयी एवं दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट में बहुतायत संख्या में पाए जाते हैं परन्तु जलवायु एवं भौगोलिक कारणों से इनके वितरण में काफी विविधता देखी जा सकती है| वास स्थान के आधार पर यह स्थलीय, अधिपादपीय, शैलोद्भिद, आरोही एवं जलीय प्रकार के होते हैं।

फर्न और फर्न सहयोगी : पर्णांग को मुख्यतः दो समूहों में विभाजित किया जाता है: फर्न और फर्न सहयोगी। दोनों समूह के पौधो को उनके पत्ती के आकार, शिरा-विन्यास, स्पोरोफिल के स्थान और शिरा विन्यास के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

1. फ़र्न में, पत्तियाँ, जटिल शिरा-विन्यास के साथ बड़ी होती हैं और बीजाणु बीजाणुधानी पुंज में उत्पन्न होते हैं। बीजाणुधानी पुंजपर्ण फलक के अपाक्षसतह पर पाया जाता है जो आमतौर पर सोरसछद नामक सुरक्षात्मक ऊतक के आवरक से ढका या विशेष गुच्छ में पाया जाता है जैसे कि ओफियोग्लोसेसी परिवार से संबंधित पौधे।

2. जबकि, फर्न सहयोगियों में,पत्तियाँ छोटी,अल्पविकसित व कम चौड़ी होती हैं (माइक्रोफिल), जिनमें केवल मध्य शिरा होती है, और बीजाणुधानियां, बीजाणुपर्ण के किनारे, तने की लंबाई के साथ या शीर्ष पर स्थित विशेष शंकु मे पायी जाती हैं।

बीजाणु : बीजाणु जीवित, एकल-कोशिका संरचनाएं हैं जो पर्णांगों के जीवन चक्र के लिए महत्वपूर्ण हैं। वे एकल कोशिकाएं हैं जिनकी बाह्य सतह सरल से लेकर अनेकों तरह से सरंचना युक्त होती हैं, जिनमें अंकुरण और निरंतरता के लिए आवश्यक आनुवांशिक सामग्री होती है।बीजाणुओं की रूपात्मक विशेषताएं वर्गीकरण, पहचान और फ़ाइलोजेनेटिक संबंधों का आकलन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पर्णांग वर्गीकरण और टैक्सोनोमिक चित्रण के लिए बीजाणु आकारिकी के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप और प्रकाश सूक्ष्म अध्ययन, विशेष रूप से बाह्यसंरचना, अलंकरण, एक्साइन मोटाईएवंरंग महत्वपूर्ण लक्षण हैं।इन संयुक्त लक्षणों का उपयोग विशेष रूप से वंश और जाति स्तर पर पर्णांगों की पहचान कुंजी की रचना में किया जाता है।क्रेमर और ट्रायॉन, (1990) के अनुसार पर्णांगों के सभी स्तरों के वर्गीकरण के लिए बीजाणु का पेलिनोलॉजिकल डाटा बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।वहीं जानसोनियस और मैकग्रेगर(1996) का कथन है कि बीजाणु अद्भुत वस्तुएं हैं इनका अध्ययन और उनकी आकृति विज्ञान असीम रूप से विविध है, एक छोटे पैकेज में उनकी सुंदरता आश्चर्यजनक रूप से हर किसी को सम्मोहित करती है।

बीजाणु परिक्षेप : बीजाणु हवा, पानी, जानवरों और यांत्रिक तरीकों से फैलते हैं इनको अंकुरित होने और बढ़ने के लिए उच्च नमी

वाले आवास की आवश्यकता होती है। पानी, बीजाणु अंकुरण, युग्मक निषेचन और फर्न के विकास का प्रमुख कारक है। टेरिडोफाइट्स में सफल बीजाणु प्रकीर्णन क़ी अनेकों विविधताएं पाई जाती हैं।

जैसे इक्विसेटम में फिताकार इलेटर्स, नामक हाइग्रोस्कोपिक उपांग होते हैं जो कि बीजाणु की बाहरी दीवार से जुड़े होते हैं और आर्द्र अवस्था में बीजाणु को चारों ओर से जकड़ लेते हैं और एक-दूसरे से चिपक जाते हैं। शुष्क परिस्थितियों में, वे झटके से खुल जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप बीजाणु आसानी से दूर तक बिखर जाते हैं।

मुख्यतः पर्णांग बीजाणुओं को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है –समबीजाणु (एक प्रकार के बीजाणु) और विसमबीजाणु दो विभिन्न प्रकार के बीजाणु (लघु बीजाणु और गुरु बीजाणु)। दिलचस्प बात यह है कि कुछ फर्न और फर्न- सहयोगियों में प्रकाश संश्लेषक के रूप में सक्रिय, हरे और पतली दीवार वाले बीजाणु भी मौजूद होते हैं। उदाहरण क्रेपिडोमेनिस मिनुटम और लेप्टोचिलस थ्वाइटेसियनस ।

बीजाणु की बाह्य आकारिकी : पर्णांगों क़ी पहचान के लिए, बीजाणु संरचना, छिद्र के रूप, आकार, सतह अलंकरण बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं जो कि पर्णांग वर्गीकरण में वंशों को पृथक करने में मदद करते हैं। आमतौर पर पर्णांग बीजाणुओं की बाह्य व अंतः सतह का वर्णन किया जाता है। अंतः सतह विकास के दौरान टेट्राड के केंद्र की ओर होती है। बाह्य सतह टेट्राड चरण में बाहर की ओर और अंतःसतह के विपरीत होती है।

बीजाणुओं के लक्षण वर्णन के लिए, इन निम्नलिखित लक्षणों का उपयोग आमतौर पर फर्न और फर्न सहयोगियों की पहचान के लिए मुख्यतः किया जाता है।

1. बीजाणु का रंग: सामान्य सूक्ष्मदर्शी से देखने पर भूरे, सफेद और पीले रंग के विभिन्न रंग।

2. बीजाणु छिद्र: बीजाणु छिद्र तीन प्रकार के हो सकते हैं- मोनोलेट, ट्राइलेट और एलेट।

   (क) मोनोलेट बीजाणुओं में एकल सतह विभाजक रेखा होती है जिसे संपर्क रेखा के साथ अक्ष में बीजाणु मातृ कोशिका विभाजन के कारण उत्पन्न होने वाले समीपस्थ अनुदैर्ध्य विदर या निशान के रूप में देखा जा सकता है।

   (ख) ट्राइलेट बीजाणुओं में ट्राइरेडिएट या वाई -मार्क के साथ 3 लेसुरा होते हैं, टेट्राड के मेगास्पोर डिवीजन के कारण समीपस्थ सतह विभाजन की रेखा स्पष्ट दिखती है।

   (ग) एलेट बीजाणुओं बिना सतह विभाजन रेखा के होता है, अतः इनपर कोई निशान नहीं होता है। जैसे: इक्विसेटम अरेवेन्से।

ट्राइलेट बीजाणु की तुलना में एक मोनोलेट बीजाणु को अधिक उन्नत या विकासशील माना जाता है।

4. बीजाणु का आकार: विभिन्न आकार के बीजाणुओं का निर्धारण उनके ध्रुवीय एवं भूमध्यरेखीय व्यास के बीच के अनुपात से होता है।बीजाणु आकार में दीर्घवृत्ताकार, चतुष्फलकीय या गोलाकार हो सकते हैं। मोनोलेट बीजाणु का आकार द्विपक्षीय रूप से समरूपता और दीर्घवृत्ताकार या अण्डाकार होता है, जबकि ट्राइलेट बीजाणु का आकार गोलाकार, गोलाकार और चतुष्फलकीय के साथ रेडियल रूप सममित होता है।

5. सतही अलंकरण: पर्णांग पादप वर्गीकरण में मुख्य लक्षण के रूप में एक्साइन अलंकरण का उपयोग किया जाता है। पर्णांग बीजाणुओं का प्राथमिक अलंकरण पैटर्न 13 विभिन्न प्रकारों में विभाजित है और कमोबेश प्रत्येक जाति में भिन्न-भिन्न होता है। जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं जैसे: बैकुलेट, क्लैवेट, इचिनेट, फोवियोलेट, जेमेट, परफोरेट, पिलेट, साइलेट, रेटिकुलेट, स्कैब्रेट, रगुलेट, स्ट्रिएट और वेरुकेट। जबकि द्वितीयक अलंकरण में प्राथमिक बीजाणु सरंचना पर पाए जाने वाले 1 माइक्रोन से छोटे अलंकृत ढांचे होते हैं ।

विभिन्न पर्णांग वंशों के बीजाणुअध्यनन से पता चलता है कि समान्यत: पर्णांगों में बीजाणु मोनोलेट और टॉइलेट दो प्रकार के ही होते हैं, विकासक्रम अध्ययनों के अनुसार ट्राइलेट बीजाणु कमविकसित पर्णांग कुलों जैसे : लाइकोपोडिऐसी, सेलाजिनेलेसी, ओफियोग्लोसैसी,

टेरीडेसी और सायथेसी आदि में पाए जाते हैं।वहीं अतिविकसित कुलों जैसे पॉलीपोडिएसी, एस्प्लीनिऐसी, एथीरिऐसी, थेलिप्टेरीडेसी, ड्रायोप्टेरीडेसी में मोनोलेटे प्रकार के बीजाणु मिलते हैं। बीजुओं का सतही अलंकरण सामान्य, समतल सपाट या फिर अलग-अलग तरह के उभार लिए हुए होता है जैसेकि ओफियोग्लोसैसी कुल की कुछ जातियों में बिल्कुल समतल एक्सीन होती है, कुछ जातियों में हलकी नुकीले होती हैं।वहीं ओफिओग्लोसम कोस्टाटम और हेल्मिन्थोस्टैकस में एक्सीन जालिकावत होती हैं, तथा बोट्रीकियम में यह मुड़ी-तुड़ी संरचना वाली होती हैं। सेलाजिनेल्ला, आइसोइट्स, मार्सिलिया, साल्विनिया वंश में दो प्रकार के बीजाणु पाए जाते हैं- लघु एवं गुरु बीजाणु।लघु बीजाणु आकार माप में 18-70 माइक्रोन तथा गुरु बीजाणु 200-1000 माइक्रोन तक के होते हैं।लघु बीजाणु से आगे चल कर नर युग्मक का विकास होता हैं, तथा गुरु बीजाणुओं से मादा युग्मक का विकास होता है।दोनों ही तरह के बीजाणुओं मे सतही अलंकरण विभिन्न प्रकार के होते हैं।

पर्णागों के सब से बड़े कुल पॉलीपोडिऐसी में बीजाणु मोनोलेटे तथा आकार मे दीर्घवृताकार या अंडा कार होते हैं और अलग-अलग वंशों में विभिन्न प्रकार के सतही अलंकरण होते है जैसे- वंश प्लैटिसिरीयम में ऐक्सीन पैपिलेट या ट्यूबरक्यूलेट होते है वहीं पाइरोसिया और लेपीसोरस में यह सपाट, हलके उभारों वाली, कभी कभी मुड़ी-तुड़ी होती है तथा ड्रायनेरिया मे यह नुकीली होती है।वंश एस्प्लीनियम, एथीरियम, डिप्लेजियम तथा थेलिप्टेरिस के बीजाणु भी मोनोलेट होते हैं लेकिन इनके सतह पेरीनेट होती है, पेरीन एक तरह के सतही संरचना है जो ऐक्सीनके ऊपर एक अतिरिक्त सतह होती है, वंश एस्प्लीनियम की कई जातिओं का विभेदन इसी पेरीन की संरचना के आधार पर किया गया है।वहीं एथीरिऐसी कुल के वंश सिस्टोप्टेरिस के जातिओं सि. डिक्कीयाना और सि. फ्रैजिल का विभेदन इनके बीजाणुओं के सतह के मुड़े-तुड़े तथा नुकीले होने के आधार पर किया जाता है।

नायर और देवी (1964) ने पर्णांग बीजाणुओं पर किये गए अध्यनन यह पाया कि ऐक्सीन के ऊपरी सतह पर पेरीन का निर्माण हुआ और समयकाल में इस पेरीन के आपस में मुड़ने-तुड़ने से विकास होने के कारण अलग अलग तरह के सतही अलंकरणों (बैक्युलेट, फेवियोलेट, पिटेड, पेपिलेट, स्पाइनुलोस, ट्यूबरक्युलेट, वेरुकेट आदि) का विकास हुआ।वंश ड्रायोप्टेरिस औरपॉलीस्टिकममें बीजाणु की ऐक्सीन सपाट और पेरीन दानेदार और नुकीली होती हैं, कभी-कभी देखने में यह भी पाया गया है कि पेरीन अर्धवृताकार, छोटी गोल मुड़कर, साबुन के बुलबुलों के भांति अलग-अलग तरह की संरचना बनाती है, जिससे जातीय विभेदन करने में काफी मदद मिलती है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि की आधुनिक तकनीकों द्वारा बीजाणुओं के अध्ययन से प्राप्त जानकारी केवल पर्णांगों की जातीय विभेदन में सहायक है बल्कि इनके बीच पारस्परिक विकास के क्रम को समझने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

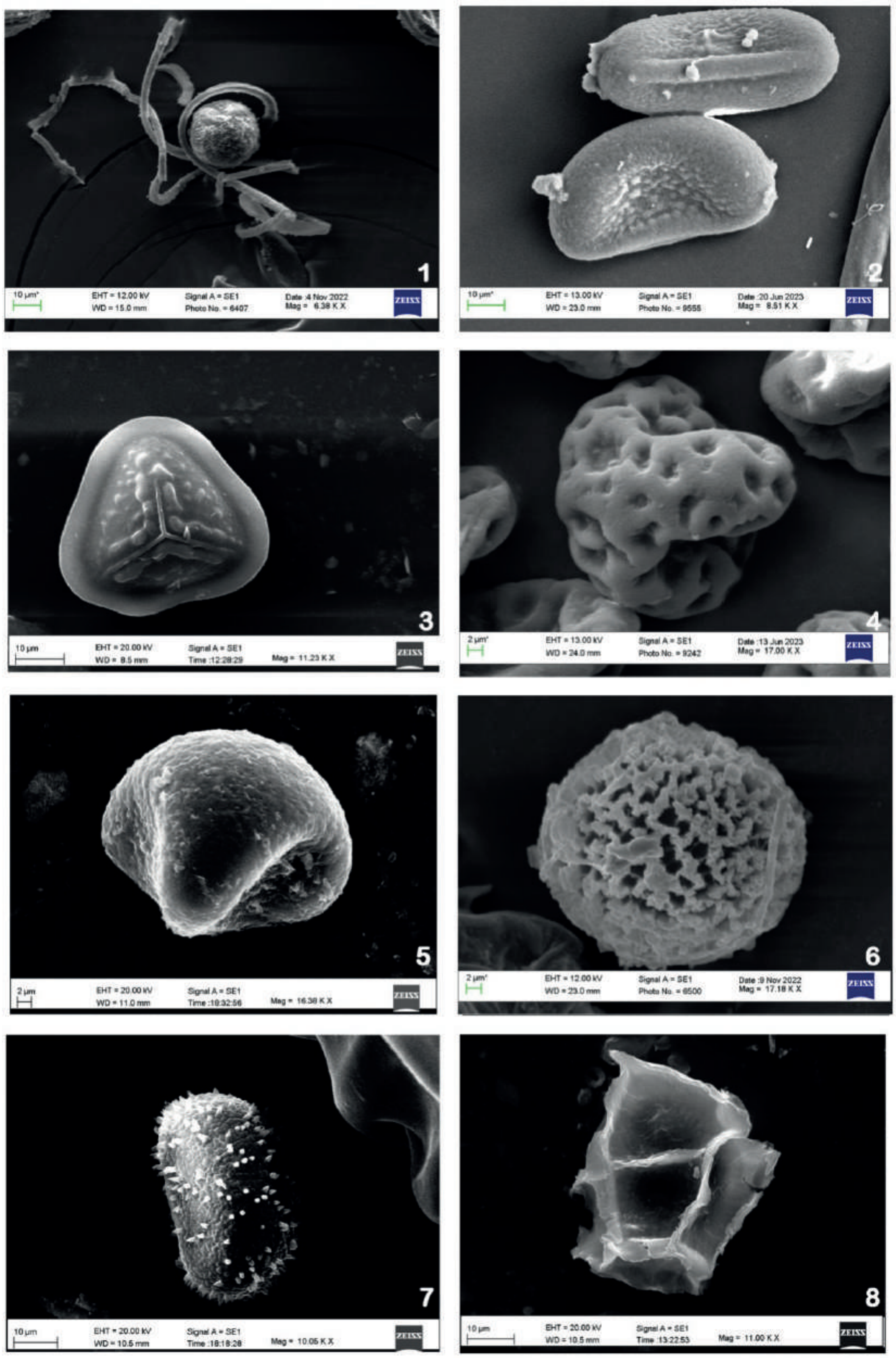

पर्णांगों मे पाये जाने वाले कुछ बीजाणु: 1. इक्विसेटम के एलेट बीजाणु और फीताकार इलेटर्स; 2. साइलोट्म के मोनोलेट बीजाणु; 3.टेरिस के ट्राइलेट बीजाणु; 4. बोट्रीकियम मे फेवियोलेट एक्सीन; 5. एडिएंटम मे सपाट एक्सीन; 6. हेल्मिन्थोस्टैकस मे रेटीकुलेट एक्सीन 7. ड्रायनेरिया मे नुकीली एक्सीन; 8. एस्प्लीनियम मे पेरीनेट एक्सीन।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 18-20 (2024)

ब्रेनिया इन्सिगनिस (हुकर) जे. स्मिथ - एक अनोखी संकटग्रस्त पर्णांग प्रजाति

हरमिन्दर सिंह, बृजेश कुमार एवं सुशील कुमार सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र, देहरादून

ब्रेनिया पर्णांग पादप समूह का एक प्रतिरूपी वंश है, जिसमें *ब्रेनिया इन्सिगनिस* (हुकर) जे. स्मिथ नामक जाति ही पायी जाती है। वनस्पति जगत में इसे 'फाल्स ट्री फर्न' के नाम से भी जाना जाता है। मूलतः यह पर्णांग चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, फिलीपिंस, ताइवान, थाईलैंड में पाया जाता है । भारत वर्ष में यह केवल पूर्वोत्तर भारत के कुछ राज्यों-अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय एवं नागालैंड में 400-1400 मी. की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। अब तक प्राप्त जानकारी से यह ज्ञात होता है कि इन क्षेत्रों में भी इसका वितरण सीमित क्षेत्रों में ही है। मेघालय राज्य के रिभोय जिले में उमियम झील के आस पास इस पर्णांग जाति को अपने प्राकृतिक आवास में उगते देखा जा सकता है।

ब्रेनिया इन्सिगनिस जाति को सबसे पहले हॉन्ग-कॉग से ब्रिटिश पादप संग्रहक जॉन बोरिंग एवं उनके पुत्र जे.ओ. बोरिंग द्वारा इसके सजीव पौधे को एकत्रित कर 1850 में इंग्लैंड के रॉयल वानस्पतिक उद्यान में लगाया गया था। महान वनस्पतिज्ञ जोसेफ डॉल्टन हुकर ने इसे इसके प्रथम संग्रहकर्ता बोरिंग एवं उनके पुत्र के सम्मान में '*बौरिनजिआ इन्सिगनिस*' नाम दिया। परन्तु यह नाम वानस्पतिक नामकरण पद्धति के अनुसार सही नहीं होने के कारण इसे संशोधित करके नया नाम *ब्रेनिया इन्सिगनिस* दिया गया। 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश पादप संग्रहकों द्वारा इस पौधे को मेघालय के खासी पहाड़ियों के आस-पास के क्षेत्रों से इकट्ठा किया और आज इसके नमूने विभिन्न पादपालयों में संग्रहित हैं।

ब्रेनिया इन्सिगनिस पर्णांगों की ब्लैकनेसी कुल से संबंधित है। यह पौधा तेज धूप वाले छायादार पहाड़ी ढलानों पर समूह में उगता है। इसके तने के शीर्ष पर लंबी-लंबी प्रपर्ण एक क्राउन की तरह व्यवस्थित होती है। जिसके कारण यह दूर से देखने में साइकस की भांति लगता है, इसलिए इसे साइकैड पर्णांग भी कहा जाता है।

विशिष्ट आवास स्थल होने के कारण वैश्विक पटल पर इस पौधे की आबादी धीरे-धीरे कम हो रही है। भारत मे भी इस पादप के संरक्षण की दिशा मे पूर्व में कोई विशेष कदम नहीं उठाए गए जिसके कारण इसकी आबादी यहाँ भी तेजी से घटी है। इस पर ध्यान देते हुए पिछले कुछ वर्षो मे अनेक अध्ययन किए गए और इसे आई. यू. सी. एन. की निकट-संकटग्रस्त जाति की श्रेणी में रखा गया है। चीन एवं ताइवान देशों में इसे सुभेद्य जाति के समकक्ष रखा गया है।

भारतीय राज्यों में इस जाति का अस्तित्व कई मानवजनित गतिविधियों के कारण खतरे में हैं, जिसमें मुख्य रूप से झूम खेती एवं भूमि उपयोग में बदलाव के कारण इसके वास स्थान का क्षरण और विखंडन हैं। इसके अतिरिक्त कोयला खनन, नगर विकास योजना, सड़क चौड़ीकरण, सड़कों के पास बसावट, वन भूमि को कृषि भूमि में परिवर्तित करना आदि कारक इस जाति के लुप्तप्राय होने के लिए उत्तरदायी हैं। इसके साथ ही स्थानीय लोगों द्वारा इसके तने से रेशे निकाले जाते हैं जिसका उपयोग ब्रश बनाने में किया जाता है, जो कि इसकी संख्या कम होने का एक महत्वपूर्ण कारक है।

पूर्व में इस पर्णांग के आकर्षक आकार एवं खूबसूरती के कारण विश्व की अनेकों पौधशालाओं एवं वानस्पतिक उद्यानों में उगाया गया है और इसका व्यापार किया जाता रहा है। परन्तु विगत कुछ वर्षो से यह जाति अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए संघर्षरत है, वहीं भारत में इसका संवर्धन पूरी तरह से उपेक्षित रहा है और यह केवल भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग तक ही सीमित रहा है। इस दिशा में स्थानीय वन विभाग एवं शोध संस्थाओं को मिलकर इसके संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सार्थक और सुव्यवस्थित कदम उठाने की आवश्यकता है।

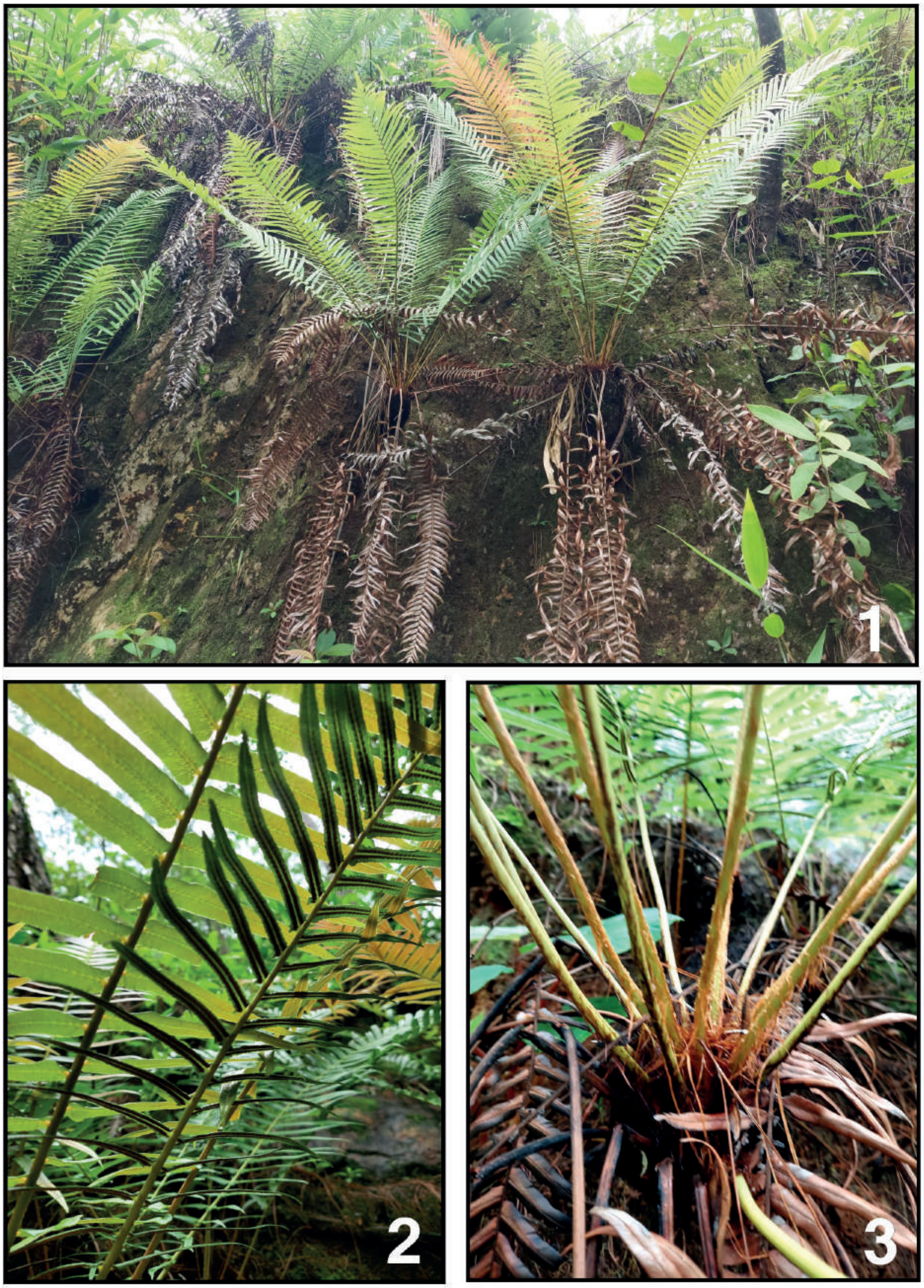

ब्रेनिया इन्सिगनिस **(हुक) जे. स्मिथ 1) प्राकृतिक आवास में *ब्रेनिया इन्सिगनिस*; 2) सोरस को धारण करता एक प्रपर्ण; 3) तने के दूरस्थ सिरे पर शल्क आच्छादित डंठल।**

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 21-25 (2024)

रामफल, सीताफल और लक्ष्मणफल

बी. लक्ष्मणुडु

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केंद्र, प्रयागराज

रामफल, सीताफल और लक्ष्मणफल वंश एनोना एनोनेसी परिवार से तालुक रखता है, जिसमें 130 पीढ़ियां और 2500 प्रजातियां शामिल हैं जो आमतौर पर कस्टर्ड एप्पल परिवार के रूप में जाने जाते हैं। यह मुख्य रूप से दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है और वेस्ट इंडीज का मूल स्थानिक हैं। इस पीढ़ी के पौधों का प्रकृति झाड़ियाँ या छोटे पेड़ के होते हैं। पत्तियाँ स्पष्ट एवं पंखुड़ियां बिंदीदार होता है। पंखुड़ियाँ अवतल आधार के साथ तिकोनी आकर का होता है। अंडप अंतत: एक अंडाकार या गोलाकार सिनकार्पस और स्वादिष्ट मीठे फलों में परिवर्तित हो जाते हैं।पुंकेसर अनेक, लगभग एक मिमी लंबे, संयोजी अंडाकार का शीर्ष। अंडप असंख्य, अंडाकार, लगभग 1 मिमी लंबा, फल अंडाकार-उप गोलाकार। इस वंश के पौधों के विभिन्न भागों को डायरी, पेय, सौन्दर्य-प्रसाधन, इत्र आदि उद्योग में इस्तेमाल किया जाता है।

रामफल

एनोना रेटिकुलाटा एल. आमतौर पर रामफल के नाम से जाना जाता है। यह पौधा मुख्य रूप से इसके स्वादिष्ट मीठे फल के लिए उगाया जाता है। एनोना रेटिकुलाटा से पृथक किए गए यौगिक पौधे के विभिन्न औषधीय गुणों के लिए जाने जाते हैं। इसके पुष्पन और फलन की अवधि अप्रैल-दिसंबर है। फल भूरे पीले से हरे लाल, जालीदार एवं अनेक कोष्ठक के साथ पाए जाते है। फल बीजचोल वर्ग का है तथा बीज काले रंग का है। भारत में यह प्रजाति अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, आंध्र प्रदेश, असम, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल में पायी जाती है।

एनोना रेटिकुलाटा एल., फल एवं पत्ते

महत्वपूर्ण उपयोग: फलों में पोटैशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, विटामिन सी भरपूर मात्रा में होता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। इसका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में विभिन्न रोगों दस्त, पेचिश, बुखार, खांसी और सर्दी के इलाज के लिए किया जाता है, और इसमें टॉनिक, कफ निस्सारक, एनाल्जेसिक, कसैले एंटीऑक्सिडेंट रोगाणुरोधी और विभिन्न औषधीय गुण होते हैं।

सीताफल

एनोना स्क्वामोसा एल. कस्टर्ड सेब जिसे यह सीताफल' के नाम से भी जाना जाता है और एक उष्णकटिबंधीय पौधा है, जिसकी भारत के विभिन्न राज्यों में बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। यह खाने योग्य फल है। इस पेड़ की लम्बाई 3 मीटर से 8 मीटर तक पहुंचता है और जिसमें भूरे या हल्के भूरे रंग की छाल वाली बड़ी, बेतरतीब ढंग से फैली हुई शाखाएँ होती हैं। छंटाई के दौरान फलों के अलावा बड़ी मात्रा में पत्तियाँ भी उत्पन्न होती हैं, जिससे किसानों के लिए उनके निपटान से संबंधित जटिलताएँ पैदा हो जाती हैं। फूल आने और फल लगने

एनोना स्क्वामोसा एल., फल एवं पत्ते

की अवधि अप्रैल-दिसंबर है | फल भूरे पीले से हरे लाल, जालीदार एवं अनेक कोष्ठक के साथ पाए जाते है। फल बीजचोल वर्ग का है तथा बीज काले रंग का है।

भारत में इस प्रजाति का वितरण अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, आंध्र प्रदेश, असम, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल में व्याप्त है।

महत्वपूर्ण उपयोग: फलों में पोटैशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, विटामिन सी भरपूर मात्रा में होता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। इसका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में विभिन्न रोगों दस्त, पेचिश, बुखार, खांसी और सर्दी के इलाज के लिए किया जाता है, और इसमें टॉनिक, कफ निस्सारक, एनाल्जेसिक, एंटीऑक्सिडेंट रोगाणुरोधी और विभिन्न औषधीय गुण होते हैं।

लक्ष्मण फल

एनोना मुरीकेटा आमतौर पर लक्ष्मणफल के नाम से जाना जाता है। यह पेड़ दक्षिण और उत्तरी अमेरिका के गहरे उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों का मूल स्थानिक है और अब दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय भागों में व्यापक रूप से वितरित किया जाता है। यह पेड़ 5-8 मीटर ऊंचाई तक बढ़ता है, जिसमें बड़े, चमकदार गहरे हरे पत्ते और 15-20 सेमी व्यास में बड़े हरे रंग के दिल के आकार के फल होते हैं, जो अद्वितीय, सुखद और सुगंधित स्वाद के साथ होते हैं। ताजा होने पर प्रत्येक फल में 55-170 काले बीज हो सकते हैं, और सूखने पर वे हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं।

फूल आने और फल लगने की अवधि अप्रैल-नवंबर है। फल हल्के हरे, म्यूरिकेट, स्पाइनसेंट, मोटे होते हैं। बीज असंख्य, भूरे-लाल रंग के होते हैं |

भारत में इस प्रजाति का वितरण अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, आंध्र प्रदेश, असम, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु में है।

महत्वपूर्ण उपयोग: संभावित औषधीय गुणों के कारण एनोना मुरीकेटा फाइटोकेमिकल्स और द्वितीयक मेटाबोलाइटस का समृद्ध स्रोत है; विभिन्न रोगों के इलाज के लिए प्राकृतिक उत्पादों का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। फाइटोकेमिकल्स की प्रचुर मात्रा के कारण इसका जातीय चिकित्सा में महत्त्व दिया जाता है। अफ्रीकी देशों में, पत्तियों का उपयोग पारंपरिक रूप से बुखार, त्वचा पर चकत्ते, ऐंठन वाले दौरों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा, बच्चे के जन्म के बाद मां के दूध को बढ़ाने के लिए इसका उपयोग करते हैं। एनोना मुरीकेटा का उपयोग एंटीऑक्सीडेंट के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग कर्क रोग और परजीवी संक्रमण के इलाज के लिए भी किया जाता है।

एनोना मुरीकेटा, फल एवं पत्ते

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 23-22 (2024)

जसमिनम पार्केरी डॉन : पश्चिमी हिमालय की संकीर्ण रूप से स्थानिक एवं लुप्तप्राय जाति

भावना जोशी, सुशील कुमार सिंह और अम्बर श्रीवास्तव

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र, देहरादून

परिचय : पर्वतराज हिमालय की जलवायु, स्थलाकृति, पारिस्थितिकी तथा 3000 से 8000 मीटर तक ऊंची ऊंची पर्वत श्रंखलाये, कई स्थानिक वनस्पतियों की विविधता का भंडार मानी जाती है। इसलिए इसे "स्थानिकता का केंद्र" भी माना जाता है। इसी श्रंखला में यहाँ पर पाए जाने वाली एक स्थानिक प्रजाति *जसमिनम पार्केरी* डॉन, जो कि ओलिएसी कुल की एक शाकीय प्रजाति है। भारत में इसे आमतौर की भाषा में "बौना चमेली या पार्क्स चमेली" के नाम से जाना जाता है। यह पश्चिमी हिमालय के उप शीतोष्ण क्षेत्रो में पायी जाने वाली संकीर्ण रूप से स्थानिक एवं लुप्तप्राय जाति है। इसके चमकीले पीले पुष्प, सुखद, सुगन्धित और आंखो को लुभाने वाले होते है। बाहरी रूप से इसकी आकृति एक प्राकर्तिक बोनसाई के रूप में प्रतीत होती है।

वितरण एवं प्राकृतिक आवास : ओलिएसी द्विबीजपत्री समूह का एक महत्वपूर्ण परिवार है जिसमे 25 वंश तथा लगभग 688 जातियाँ (एकवर्षीय या बहुवर्षीय) पायी जाती है जो कि विश्वभर में समशीतोष्ण और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वितरित है। भारत में इस कुल की 89 प्रजातियां जो कि 12 वंश से संबधित है। *जसमिनम ओलिएसी* कुल का एक महत्वपूर्ण वंश है जिसकी लगभग 200 प्रजातियां ज्ञात है। ये ज्यादातर झाड़ीदार या झाड़ीनुमा लताओ के रूप में होते है। यह वंश उष्णकटिबंधीय उपोष्णकटिबंधीय पुरानी दुनिया से लेकर मध्य चीन और प्रशांत क्षेत्र तक विस्तारित है। इसके अलवा यह यूरोप, कैरिबियन क्षेत्र और अमेरिका में भी पाया जाता है। भारत में इसकी 48 प्रजातियां तथा 3 उपजातियां तथा 4 प्रभेद मिलती है जिनमे से 17 प्रजातियां स्थानिक है तथा पूर्वी और पश्चिमी हिमालय, डेकन्न प्रायद्वीप, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में पायी जाती है। आमतौर पर इसमें लगने वाले रंगीन एवं सुगंधित पुष्पों के लिए इसकी खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त इस वंश के पुष्प को अलसर, त्वचा सम्बन्धी विकारों, नेत्र के उपचार तथा सौंदर्य प्रसाधनों इत्र और त्वचा सम्बंदित उत्पादों के निर्माण में भी प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों का अर्क स्तन कैंसर पर भी लाभकारी है।

जसमिनम पार्केरी भारत के पश्चिमी हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर पायी जाने वाली दुर्लभ और बिंदु स्थानिक प्रजातियों में से एक है तथा इसका वितरण केवल हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले तक ही सीमित है। *जसमिनम पार्केरी* को पहली बार जे.एच. लेस द्वारा 1899 में हिमाचल प्रदेश के (चम्बा क्षेत्र से) रूपानी जंगल से एकत्र किया गया था हालाँकि लेस के इस संग्रह को डॉन के द्वारा लगभग 20 वर्षो तक संज्ञान में नहीं लिया गया। इस प्रजाति को आर.एन. पार्कर द्वारा 1919 में भारत के हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले के भ्रमौर उपखंड के होली क्षेत्र से भी एकत्र किया गया था। इस पौधे का सबसे पहले वर्णन एस. टी. डॉन (1920) ने रॉयल वानस्पतिक उद्यान, क्यु में पार्कर के द्वारा जमा किये गए नमूनों के संग्रह के आधार पर किया। तत्पश्चात पार्कर ने 1924 में ऐ फारेस्ट फ्लोरा फॉर दा पंजाब विथ हज़ारा एंड दिल्ली में इसके होने की जानकारी अंकित की। कई शोधकर्ताओ जैसे गुप्ता और चंद्रा (1957), श्रीवास्तव (1987), श्रीवास्तव और कपूर (1987), जैन एवं अन्य (2011) ने भारतीय ओलिएसी पर कार्य किया पर किसी को भी इस प्रजाति के नमूने नहीं मिले मिले। ब्रिज लाल और उनकी टीम ने (2014) में पश्चिमी हिमालय के चंबा जिले (हिमाचल प्रदेश) के भ्रमौर मंडल के सुदूर आदिवासी इलाको से पुनः इस दिलचस्प पौधे के नमूने को खोजने में में सफलता प्राप्त की। जो कि पार्कर के बाद 100 वर्षो के उपरांत दूसरी बार यह जाति अपनी स्थानीय इलाके से एकत्र हुयी।

जसमिनम पार्केरी पश्चिमी हिमालय में चम्बा जिले के भ्रमौर क्षेत्र के ऊपर रावी बेसिन में भूमि में समुद्र तल से 1600-2300 मीटर की ऊंचाई पर आंशिक रूप से छायादार स्थानों में उगती है। आम तौर पर यह चट्टानों की दरारों में समतल भूमि पर पत्थरों के बीच में उगती है। कभी-कभी यह *एग्रोस्टिस पाइलोसुला* ट्रिन, *अजुगा पारविफ्लोरा* बेंथ, *आर्थ्रेक्सन लांसिफोलियस* (ट्रिन) होचस्ट, *एस्पलेनियम ट्राइकोमेन्स* एल., *एस्ट्रैगलस एमहर्स्टियानस* बेंथ., *एस्ट्रैगलस ओप्लाइट्स* बेंथ एक्स आर. पार्कर, केरेक्स एल., *क्रेपिस जैपोनिका* (एल.) बेंथ., डैफने *म्यूक्रोनाटा* रॉयल, *इक्विसेटम अर्वेन्से* एल., *लाउनिया प्रोकुम्बेंस* (रोक्सब.) रामय्या और राजगोपाल, *लोटस कॉर्निकुलैटस* एल., *मेडिकैगो फल्काटा* एल., *माइक्रो मेरिया बिफ्लोरा* (बुच.-हैम. एक्स डी.डॉन) बेंथ., *नेपेटा लाविगाटा* (डी.डॉन) हैंड.-माज़., *ऑक्सेलिस कॉर्निकुलाटा* एल., *रबडोसिया रूगोसा* (वॉल. एक्स बेंथ.) एच.हारा, *सगेरेटिया थिया* (ऑस्बेक) एम.सी. जॉन्स्टकी, *साल्विया मूरक्रॉफ्टियाना* वॉल एक्स

बेंथ., *स्टिपा सिबिरिका* (एल.) लैम., *टारैक्सैकम ऑफिसिनेल* वेब और *थीम्डा अनाथेरा* (नीस एक्स स्टीड.) हैक. प्रजातियों के साथ चारागाह, सड़क के किनारे और पत्थर की दीवारों की ढलानों पर भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

इसकी ऊंचाई 1 फीट तथा विभिन्न प्रकार की मृदा में पतले फैले हुए तनों जो कि झाड़ीनुमा रूप में उगती है I इसके पौधे अपना विकास अच्छी तरह से पूर्ण रूप से सूखे हुए क्षेत्र में ही करते है। ठंडी जलवायु और सर्दिया इसके विकाश के लिए उपयुक्त नहीं है I गर्मियों की शुरुआत में यह अपना पुष्पन पीले पुष्पों के गुच्छे के साथ करता हैं।

स्थानिक चिर परिचित नाम : जसमिनम शब्द अरबी भाषा का लैटिन रूप है जिसका अर्थ है "मीठी सुगंध वाला पौधा"। यह शब्द 16वीं सदी के आस पास इंग्लैंड में पहली बार इस्तेमाल किया गया। इसके अतिरिक्त इसे कुछ सामान्य नामो जैसे की बौना फूल वाली चमेली, बौना चमेली, हिमालयन चमेली, पार्कर जैस्मीन से भी जाना जाता है। वर्गीकरण पद्दति के अनुसार पहले पूर्ण में इसे वानस्पतिक नाम *जसमिनम पार्केरी* डॉन के नाम से जाना जाता था जो कि वर्तमान में पोवो साईट के अनुसार क्राइसो जसमिनम पार्केरी (डॉन) बन्फी हो गया है I

सक्रिय संघटक: ओलिएसी परिवार में विभिन्न प्रकार के क्रियाशील तत्त्व पाए पाए जाते है, जैसे की फ्लेवोनोइड्स, मोनोटरपिनोइड्स, इरिडोइड्स, सेकोइरिडोइड्स और फेनिलेएथेनॉइड ग्लाइकोसाइड्स आदि। सेकोइरिडोइड्स यौगिकों का एक समूह है जो की साइक्लोमेथीन ऑक्सीम यौगिकों में सी-7 और सी-8 के बीच दरार से साइक्लोपेंटेन मोनोटरपीन नामक यौगिक के डेरिवेटिव से बनता है। सेकोइरिडोइड्स विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे कि मधुमेह, सूजन रोधी, न्यूरोप्रोटेक्टिव, कैंसर रोधी और मोटापा रोधी गतिविधियों के निदान हेतु औषधीय रूप में कार्य करती है। जसमिनम की प्रजातियां अपने सक्रिय संघटको की वजह से आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली में सदियों से विभिन्न प्रकार की बीमारियों की रोकथाम के लिए उपयोग की जा रही है साथ ही अपनी औषधीय गुणवत्ता के कारण फार्मासिटिकल उद्योग में इनकी अत्यधिक मांग भी है। जिनमे से कुछ इस प्रकार है :- *जसमिनम आफिसिनेल* को रोगाणुरोधी, एंटीऑक्सिडेंट, सूजन-रोधी, कीटनाशक, कृमिनाशक, अल्सर रोधी, डायरिया रोधी और एनाल्जेसिक जैसे रोगों के उपचार के लिए उपयोग किया जाता हैं I इसकी पत्तियों के जलीय अर्क में एल्केलोइड, कूमेरिन्स, फ्लेवोनोइड्स, टैनिन, टरपिनोइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, स्टेरोईड्स आदि सक्रिय संघटक पाए जाते है I

जसमिनम मेन्सी की पत्तियों में सेकोइरिडॉइड, ग्लूकोसाइड, कैफिक ग्लाइकोसाइड और फ्लेवनोइड्स मुख्य रूप में पाए जाते हैं। इसकी पत्तियों के मेथनॉलिक अर्क से कई ग्लूकोसाइड को अलग किया गया है जैसे जैसमिनिन, जैस्मोसाइड, जैस्मेसोसाइड, ओलेयूरोपिन आदि I जसमिनम सम्बैक में इरिडोइडल ग्लाइकोसाइड्स, लिनालिल 6-ओ-मैलोनील-बीटा-डी-ग्लूकोपाइरेनोसाइड, बेंज़िल 6-ओ-बीटा-डी-ज़ाइलोपाइरोनोसिल-बीटा-डी-ग्लूकोपाइरानोसाइड शामिल हैं। *जसमिनम पॉलीएंथम* की पत्तियों और फूलों की जांच से इसमें एल्कलॉइड्स, फिनोल, क्विनिन, सैपोनिन और टेरपेनोइड्स के होने की पुष्टि हुई है। *जसमिनम एम्लेक्सिकौल* में सेकोइरिडॉइड ग्लूसीसाइड्स-जैसैम्पलेक्सोसाइड्स ए, बी, सी, 10- हाइड्रॉक्सिलिग्स्ट्रोसाइड और जैस्मिनोसाइड प्रचुर मात्रा में पाये जाते है I

अभी तक के प्रकाशित शोधो के अध्यन के आधार पर यह पता चलता है कि *जसमिनम पार्केरी* इसके सक्रिय संघटकों को अभी तक ना ही जांचा गया है और ना ही प्रत्यक्ष रूप से इसकी पारंपरिक औषधियों का कोई भी उल्लेख किसी भी प्रकाशन में किया गया है। अभी तक इस प्रजाति पर कोई शोध कार्य हुआ ही नहीं है इसलिए इस संकटग्रस्त प्रजाति पर शोध करने की अत्यंत आवश्यकता है।

औषधीय उपयोग : जसमिनम वंश की कई जातियों का उपयोग मूत्रवर्धक, एनल्जेसिक, एंटीसेप्टिक, कफ निष्कारण, अवसाद रोधी, खांसी, हिस्टीरिया एवं गर्भाशय की बीमारियों और प्रसव संबंधी समस्याओं के निदान के लिए किया जाता है I इसके अलावा इसके पुष्पों की खेती इत्र और सुगंध बनाने के लिए की जाती है। अभी तक प्रकाशित शोधो के अध्यन से पता चलता है कि जसमिनम पार्केरी की औषधीय गुणवत्ता और सक्रिय संघटको पर शोध नहीं हुआ है I अतः इस प्रजाति पर शोध करने की अत्यंत आवश्यकता है ताकि इसकी उपयोगिता से लोगों को जागरूक कर सके।

प्रवर्धन : इस जाति के संकीर्ण वितरण, उचित संरक्षण के उपाय न होने के कारण इस प्रजाति की जनसंख्या में गिरावट आ गई है जिस कारण यह आज लुप्तप्राय और संकीर्ण सीमा वाली एक स्थानिक जाति बन गई है I इसके अस्तिव को भविष्य के लिए संरक्षित रखने में एक्स सीटू संरक्षण एक अहम् भूमिका निभाता है I इसका गुणन बीजो के माध्यम से भी संभव है लेकिन बीजो की अंकुरण क्षमता काफी कम होती है तथा अंकुरों की वृद्धि की गति भी काफी धीमी होती है I

इसके अतिरिक्त आनुवंशिकता को बनाए रखने के लिए अलैंगिक तरीकों से प्रजनन भी एक प्रभावी वैकल्पिक दृष्टिकोण हो सकता है जिसके अंतर्गत स्टेम कटिंग आता है। स्टेम कटिंग में तने को वृद्धि हार्मोन ऑक्सिन, एन. ऐ. ऐ., आई.ए.ए और आई.बी.ए को अलग अलग सांद्रता में बाहरी रूप से दिया जाता है, इसके माध्यम से प्रवर्धित पौधे अगले सीज़न में व्यवहार्य बीज निर्माण के साथ फलते और फूलते हैं।

(1) जसमिनम पार्केरी के पुष्प (2) फल (3) बीज (4) जसमिनम पार्केरी के संवर्धित पौधे

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 26-29 (2024)

देओरी जनजाति के जातीय चिकित्सा में प्रयोग होने वाले पौधे

छाया देओरी[1], विजय[2], बिस्वा बिकोमिया देओरी[3] एवं एस. आर. तालूकदार[4]

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावडा
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्र केंद्र शिलांग
[3]अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज, लोहित
[4]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रीय केंद्र, ईटानगर

परिचय

देओरी असम की एक मैदानी जनजाति है। डॉ.पी.सी.शाकिया के अनुसार देओरी शब्द का अर्थ है पूजा करने वाला लोग यानी जो भगवान या देवी के मंदिर के स्वामी होते हैं। देओरी 13वीं शताब्दी से पहले असम में प्रवेश करने वाले पहले आर्य थे। देओरियों में मंगोलियन विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। इस जनजाति का प्रकृति के बीच रहने का अपना तरीका है और उन्हें अपने क्षेत्रों से अथाह सामाजिक-धार्मिक लगाव है। इस जनजाति की पीढ़ियाँ एक खास संस्कृति के साथ एक निश्चित सांस्कृतिक स्वरूप और आस-पास की प्रकृतिक वस्तुओं से घनिष्ठ लगाव मुख्यतः जंगल और पर्यावरण के साथ गुज़री हैं। एथ्नोबोटनी की दृष्टि से इस जनजाति के पास मनुष्यों और पालतू पशुओं की विभिन्न बीमारियों के इलाज में पौधों और उनके संयोजनों के उपयोग के बारे में ज्ञान का समृद्ध खजाना है। वर्तमान में देओरी असम के कुछ जिलों मुख्यतः लखीमपुर, धेमाजी, सिबसागर, जोरहाट, सोनितपुर, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया में पाए जाते हैं। वे अरुणाचल प्रदेश के दो जिलों लोहित और सांगलांग में भी पाए जाते हैं। देओरी जनजाति के गाँव के वृद्ध पुरुष और महिलाएँ पौधों का सही प्रकार से उपयोग करके मनुष्य की छोटी से लेकर बड़ी-बड़ी बीमारियों को ठीक करने में गहरी रुचि रखते हैं। इसके लिए वे अक्सर आस-पास के जंगल से जड़ें, पत्ते, छाल और फल इकट्ठा करते हैं और विभिन्न मानव रोगों के उपचार के रूप में उपयोग की जाने वाली दवाइयाँ तैयार करते हैं। उन्हें अपने पूर्वजों से ज्ञान विरासत में मिला है और वे पारंपरिक रूप से आज तक इस प्रक्रिया को जारी रखे हुए हैं। यह शोधपत्र असम के देओरी की समृद्ध एथ्नो-मेडीसिन पद्धतियों पर एक नज़र डालने का एक प्रयास किया गया है, जिसे संरक्षण करने की आवश्यकता है क्योंकि आधुनिकता जनजाति के सांस्कृतिक मूल्यों में घुसपैठ कर रही है। शोधपत्र में उपचार में उपयोग की जाने वाली 33 पौधों की प्रजातियों और मिश्रण की तैयारी में शामिल चरणों की गणना की गई है।

सामग्री और विधियाँ

यह शोध मुख्य रूप से शिवसागर, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया के तीन जिलों में किया गया था। शिवसागर जिला 26°45′ -27°15′ उत्तरी अक्षांश और 94°25′-95°25′ पूर्वी देशांतर के बीच फैला हुआ है। यह शोध असम के शिवसागर, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया जिले के देओरी जनजाति के बुजुर्ग व्यक्तियों, पुरुष और महिला दोनों के साथ व्यापक व्यक्तिगत साक्षात्कार और अवलोकन के माध्यम से किया गया था। वे आम तौर पर किसान हैं और उनमें से अधिकांश विभिन्न प्रयोजनों में देशी पौधों के पारंपरिक उपयोगों से परिचित हैं। देओरी जनजाति द्वारा उपयोग की जाने वाली देशी पौधों की प्रजातियों को लोगों द्वारा दिखाए गए अनुसार जंगल से एकत्र किया गया था और विभिन्न बीमारियों के उपचार में उपयोग किए जाने वाले पौधों और भागों के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्र की गई थी। आमतौर पर यहाँ पाए जाने वाले अधिकतर पौधे अधिकांश लोगों को ज्ञात थे। सभी गणना की गई पौधों की प्रजातियों की पहचान प्रासंगिक और मानक साहित्य की मदद से की गई थी।

परिणाम और चर्चा

वर्तमान में इस प्रयास से शिवसागर, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया जिलों के देओरी लोगों द्वारा जातीय-चिकित्सा के रूप में उपयोग करने के लिए **40** विभिन्न पौधों की प्रजातियाँ पाई गई हैं। (तालिका I) आजकल अध्ययन क्षेत्रों के लोगों की आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं तक अच्छी पहुँच है, फिर भी वे विभिन्न बीमारियों के लिए अधिक प्रभावी और बिना किसी दुष्प्रभाव वाली जातीय-चिकित्साओं को प्राथमिकता देते हैं।

तालिका 1 : देओरी जनजाति द्वारा जातीय चिकित्सा में उपयोग किये जाने वाले पौधे:-

क्र. सं.	प्रजाति	स्थानीय नाम	कुल	उपयोगी भाग	उपयोग
1	*सिसाम्पेलोस पेरेरा* एल.	तुबकी लोटा	मेनिस्पर्मेसी	पत्ती, तना	घाव के उपचार में उपयोगी।
2	*गार्सिनिया किडिया* रॉक्सब	कुजी थेकारा	क्लूसियासी	फल	पेचिश में उपयोगी।
3	*ज़ैंथोक्सिलम नाइटिडम* (रॉक्सबी.) डीसी	तेज मोई	रूटेसी	फल,बीज,पत्ती	इसके बीजों का सेवन पेट की खराबी, दांतों के इनेमल रोग को ठीक करने और मुंह को शुद्ध करने के लिए किया जाता है। लीवर की शिकायत के लिए फलों का चूर्ण दिया जाता है।
4	*स्माइलेक्स प्रोलिफेरा* रॉक्सब	तिकोनी बोरा	स्माइलीकेसी	राईजोम, जड़, पत्ती	मांसपेशियों में दर्द, दांत दर्द, मूत्र संबंधी रोग और पीलिया।
5	*पोथोस कैथकार्टि* शोट	कोकोल सिया	ऐरेसी	जड़, पत्ती	पत्तियों का चूर्ण चेचक के दानों पर लगाया जाता है। इसकी जड़ को पीसकर तेल में भूनकर लगाने से मलाशय ठीक हो जाता है।
6	*थेवेटिया नेरीफोलिया* जूस	कोरोबी फूल	एपोसायनेसी	पत्ती, फल	घाव को ठीक करने में उपयोगी।
7	*जस्टिसिया जेंडुरुस्सा* एल.एफ.	अहोम फूल	एकैंथेसी	पत्ती, जड़, फल, फूल, छाल	मूत्रवर्धक, कफनाशक, ऐंठनरोधी। यह फेफड़ों के रोगों को ठीक करने में भी सहायक है।इसमें एंटीसेप्टिक गुण होते हैं और बताया गया है कि इससे अच्छा कीटनाशक प्राप्त किया जा सकता है।
8	*फ़्लोगोकेन्थस थाईरिसीफॉरमिस* (रोक्स. एक्स हार्डव) मैब	तीता फुल	एकैंथेसी	फल, फूल, पत्ती	सर्दी, खांसी, मधुमेहरोधी, इन्फ्लूएंजा, बच्चे के जन्म में आसानी में उपयोगी।
9	*मैलोटस फ़िलिपेंसिस* ए. जूस	हुक्म पोटिया	यूफोर्बिएसी	ग्रंथियाँ और फल के बाल	कृमिनाशक, रेचक, और कामोत्तेजक।
10	*स्कोपारिया डल्सिस* एल.	सेनी बॉन	प्लांटागिनेसी	पत्ती और सम्पूर्ण पोधा	ड्राईमारिया कॉर्डेटा पौधे की पत्ती को मसलकर चुटकी भर नमक के साथ मिलाकर आंखों के घावों पर लगाने से सूजन, ज्वर, खसरा, फोड़े और इम्पेटिगो में भी उपयोग होता है। सिरदर्द और चक्कर को कम करने के लिए पूरे पौधे का पेस्ट लगाया जाता है।
11	*अल्स्टोनियन स्क्लोरिस* (एल.)आर. बीर	कटियाना	एपोसायनेसी	पत्तियाँ, छाल, दूधिया रस	थर्मोजेनिक, ज्वरनाशक, रेचक, उत्तेजक, वातनाशक, स्टोचिक, कड़वा टॉनिक, कसैला, कामोत्तेजक, कफ निस्सारक, ज्वरनाशक, आवर्तक, पेट दर्द और पेचिश।
12	*रिसीनस कम्युनिस* एल.	इरा गोच	यूफोर्बिएसी	बीज का तेल, पत्ती, जड़	सूजन, फोड़े-फुंसियों और गठिया से प्रभावित जोड़ों पर पत्तियों को गर्म करके पट्टी की तरह बांधा जाता है। सूखी जड़ का उपयोग ज्वरनाशक के रूप में किया जाता है। तेल का उपयोग विरेचक के रूप में किया जाता है।
13	*ड्राईमारिया कॉर्डेटा* एल.	लाजाबोरी	कैरियोफ़ायलेसी	सम्पूर्ण पौधा, पत्ती	इसके पूरे पौधे का काढ़ा उल्टी और दस्त में उपयोग किया जाता है। सांप के काटने पर इसकी पत्तियों का लेप औषधि के रूप में लगाया जाता है और रस भी इसी उद्देश्य से पिलाया जाता है।
14	*धतूरा मेटेल* एल.	धतुरा	सोलेनेसी	जड़, पत्ती, फूल, फल और बीज	सूखे बीजों को पत्तियों की तुलना में अधिक शक्तिशाली सोपोरिफिक माना जाता है। स्वापक, एनोडाइन, ऐंठनरोधी, पुतली का फैलाव में उपयोगी।
15	*वाईटेक्स निगुंडू* एल.	पोसोटिया	लेमियेसी	पत्ती, जड़, फूल, फल और छाल	इसका उपयोग त्वचा रोग और दांत दर्द को ठीक करने के लिए भी किया जाता है।पत्तियों और जड़ को ज्वरनाशक और टॉनिक माना जाता है। रस से बना मलहम बालों के टॉनिक के रूप में लगाया जाता है।
16	*मिकिनिया माइक्रान्था* एल.	जर्मोनी लोटा	एस्टरेसी	पत्ती	घावों को ठीक करना, त्वचा से रक्तस्राव, एनाल्जेसिया, रोगाणुरोधक, त्वचा संक्रमण और अल्सर में उपयोगी।

17	*यूपेटोरियम ओडोरेटम* एल.	जर्मोनी बॉन	एस्टरेसी	पत्ती, सम्पूर्ण पौधा	यह पौधा मूत्रल, रक्तपित्तनाशक, रेचक और वमनकारक है। जूस का उपयोग पेट दर्द, मूत्र संबंधी परेशानियों और उच्च तापमान को कम करने के लिए किया जाता है।
18	*सिनोमोमम बिजल्गोटा* (बुच-हैंम)स्वीट	कोटोकु	लोरेसी	छाल	मूत्र संबंधी परेशानी, लीवर की शिकायत, और पित्ताशय की पथरी को दूर करने के लिए काढ़ा दिया जाता है।
19	*एकोरस कैलेमस* एल.	बोच	ऐकोरेसी	राईजोम	खांसी, वीर्यरक्तता, मूत्रकृच्छ।
20	*पेडेरिया फिटिडा* एल.	वाडेई लोटा	रुबयेसी	संपूर्ण पौधा, जड़, पत्ती,	पूरे पौधे का उपयोग आंतरिक और बाह्य दोनों तरह से आमवाती रोगों में किया जाता है और मूत्र पथरी, बेसिलरी पेचिश में भी उपयोग किया जाता है। शूल, गठिया, गठिया और ऐंठन। जड़ कृमिनाशक है। पत्ती के रस का उपयोग पेचिश और दस्त के लिए किया जाता है।
21	*सैना अलाटा* (एल.)रोक्स्बर्घ	मागालुवा	फैबेसी	पत्ती, फूल	पत्तियाँ जलनाशक, ज्वरनाशक, मूत्रवर्धक और मूत्रल होती हैं।
22	*कैलोट्रोपिस जाईजेंटा* (एल.) डव्लू टी. आईटन	अकोन गोच	एपोसायनेसी	लेटेक्स, पत्ती, जड़, जड़ की छाल, फूल	ताजी पत्तियों को सूजन पर सूखी सिंकाई के रूप में लगाया जाता है, जलने पर पत्तियों को पीसकर लगाया जाता है। दूधिया रस का उपयोग तीक्ष्ण एवं तीव्र विरेचक के रूप में किया जाता है। लेटेक्स एक मछली का जहर है।
23	*सिडा रोंबिफ़ोलिया* एल.	हुन बोन	मालवेसी	जड़, पत्ती	बुखार, हृदय रोग, जलन, बवासीर में उपयोगी।
24	*बिसकोफिया ज्वानिका* ब्लूम	यूरीऍम	फाइलैंथेसी	छाल	पेट के अल्सर, तपेदिक, मुंह के अल्सर और एथलीट फुट का उपचार।
25	*पैनडेमस फर्केटस* रोक्स्बर्घ	केटकी	पांडानेसी	पत्ती,तना, जड़	पेचिश का इलाज करने के लिए।
26	*कैलेमस फ्लोरीबंडस* ग्रिफ़्फ़		ऐरीकेसी	जड़	पेट दर्द, अपच, और मलेरिया।
27	*पिकनरहिना प्लेनीफ़्लोरा* हुक एफ. और थोमसन	खुलखुली	मेनिस्पर्मेसी	जड़, पत्ती	सिरदर्द, बुखार, दौरे, आंखों में जलन, मलेरिया, पेट में सूजन और सर्पदंश में उपयोगी।
28	*इनूला कप्पा* डीसी	तोंगलोटी	एस्टरेसी	जड़ का जूस	पेप्टिक अल्सर, अपच और अन्य गैस्ट्रिक विकारों का उपचार।
29	*डेडालाकैनथस सुफ्रूटीकोसम* टी. एंडरसन	कराटी दोवा बॉन	एकैंथेसी	पत्ती, फूल	क्रोनिक, श्वसन का इलाज करने के लिए उपयोग किया जाता है
30	*हेमीडेसमस इंडीक्स* बीर.	नवल जुवा	फैबेसी	पत्ती,जड़, फल	यह रक्तशोधक एवं टॉनिक है। यौन संबंधी जटिलताएँ, दाँत का दर्द और साँप तथा बिच्छू के काटने की दवा
31	*एकेसिया फारनिसियाना* वाईलड	कोदोम गूच	फैबेसी	छाल	कसैला, शांतिदायक और परिवर्तनकारी।
32	*पर्मिग्याना स्केनडंस* (ग्रिफ़्फ़) क्रिल	तिता जोहा	रूटेसी	छाल, पत्ती	मधुमेह, हेपेटाइटिस, कैंसर, नाक में संक्रमण में उपयोगी।
33.	*मिमोसा पुडिका* एल.	अडोरी बॉन लाजुकी	फैबेसी	पत्ती, जड़	वातनाशक, जड़ कामोत्तेजक, रस रोगाणुरोधक और रक्तशोधक है।
34.	*सोलेनम टोरवम* स्वार्त्ज़	हाटी बेकुरी	सोलेनेसी	पत्ती, फल	घावों पर पत्तों का लेप लगाया जाता है। फलों का उपयोग खांसी के इलाज के रूप में किया जाता है।
35.	*लुकास ऐस्पेरा* (वाईल्ड) लिंक	दोरोंन पुष्पा	लैमयेसी	पत्ती	पत्तियों के रस का उपयोग ज्वरनाशक के रूप में और एलो का उपयोग सोरायसिस, पुरानी त्वचा के फटने और दर्दनाक सूजन के बाहरी उपचार के रूप में किया जाता है।
36.	*कैथेरैन्थस रोजीयस* (एल.) जी. डॉन	नयनतारा पिरोली	ऐपोसय्नेसी	पत्ती, जड़, तना	विभिन्न त्वचा समस्याओं, कैंसर विरोधी, मधुमेह, पेचिश, पेट में ऐंठन के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।
37.	*कालान्चे पिन्नाटा* (लैम) पर्स.		क्रेसुलेसी	पत्ती	सिर दर्द, जलन आदि में पत्तों का लेप लगाया जाता है। फोड़े, सूजन, घाव, गैस्ट्रिक जटिलताओं, कीड़े के काटने, गुर्दे की पथरी में भी उपयोग किया जाता है।
38.	*सेंटीला एशियाटीका* (एल.) उर्ब.		ऐपीयेसी	सम्पूर्ण पौधा, पत्ती, फल, जड़, टहनियाँ	टॉनिक मूत्रवर्धक और ओकल उत्तेजक, शामक। खांसी, जुकाम, बुखार, पेटदर्द में पत्तों का काढ़ा बनाकर सेवन किया जाता है। इस पौधे का उपयोग कुष्ठ रोग और त्वचा रोग के इलाज के लिए किया जाता है। रक्तशुद्धि, पेचिश, अतिसार में भी उपयोग किया जाता है।

39.	*पाईपर नाईगरम* एल.		पाईपरेसी	बीज, फल	यह एंटी-ब्लेनोर्लियाजिक है। खांसी के इलाज के लिए इसे शहद के साथ मिलाएं। यह पेट दर्द, अपच, मलेरिया, बवासीर और माइग्रेन के लिए दिया जाता है।
40.	*होटोनिया कोर्डाटा* थान्बेर्जिया		सोउरोसी	जड़, पत्ती	मूत्रवर्धक, पेट दर्द, हैजा और पेचिश के लिए रस लिया जाता है।

चित्र: **A.** कैलोट्रोपिस जाईजेंटा (एल.)डब्लू टी. आईटन **B.** सैना अलाटा (एल.) रोक्स्बर्घ **C.** कैथैरैन्थस रोजीयस (एल.) जी. डॉन **D.**रिसीनस कम्युनिस एल. **E.** थेवेटिया नेरीफोलिया जूस **F.** लुकास ऐस्पेरा (वाईल्ड) लिंक **G.** फ़्लोगोकेन्थस थाईरिसीफॉरमिस (रोक्स. एक्स हार्डव) मैब **H.** मिमोसा पुडिका एल. **I.** सोलेनम टोरवम स्वार्त्ज़

देओरी जनजाति के बुजुर्ग लोग, अधिकांश बीमारियों का इलाज करते हैं, जबकि कुछ अन्य लोग हड्डियों को जोड़ने, जलने के घावों को भरने, कुत्ते, कीड़े और जहरीले सांपों के काटने पर इलाज करने में विशेषज्ञ हैं। जड़ी-बूटियों के मौखिक सेवन के अलावा, स्नान, धूनी, सेंक, रेचक लगाने आदि जैसे उपचार के अन्य तरीकों का अभ्यास करने के उदाहरण भी हैं। प्रस्तुत शोधपत्र असम के तीन जिलों मुख्य रूप से शिवसागर, डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया जिले में रहने वाली देओरी जनजाति द्वारा जातीय चिकित्सा और जंगली खाद्य पौधों के उपभोग से संबंधित पौधों पर आधारित पारंपरिक कौशल और प्रौद्योगिकी के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का पता लगाने और उनका दस्तावेजीकरण करने का एक प्रयास किया गया है। यह प्रयास केवल जातीय-औषधीय पौधों पर वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रकृति पर आधारित औषधीय योगों के विकास के लिए ध्यान आकर्षित करने के लिए किया गया था।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 30-31 (2024)

मैगनोलिया लिनिअस: विकासवादी, औषधीय और आर्थिक महत्व

विजय[1], डेविड एल. बियते[1], सुबर्ना हाजोंग[3], छाया देओरी[1], दिनेश कुमार अग्रवाला[2] एवं एन.ऑडियो[1]

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग, मेघालय
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,मुख्यालय, कोलकाता
[3] भाकृअनुप- राष्ट्रीय आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो- क्षेत्रीय स्टेशन, उमयम, मेघालय

मैगनोलिया लिनिअस, मैगनोलिएसी कुल का एक टाईप वंश है, इसका नाम प्रसिद्ध फ्रांसीसी वनस्पतिशास्त्री पियरे मैगनोल के नाम पर रखा गया था। मैगनोलिया वंश की प्रजातियाँ मूलतः पूर्वी एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्वी हिमालय, उत्तर-अमेरिका के दक्षिण-पूर्वी भाग, मध्य अमेरिका और वेस्ट इंडीज के समशीतोष्ण और उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पायी जाती हैं। विश्व स्तर पर, मैगनोलिया वंश की अनुमानित 219 प्रजातियाँ पायी जाती है। (मैबेर्ली 2017)। भारत में मैगनोलिया वंश की 28 प्रजातियाँ (कुमार तथा राजू, माँओ और दाश द्वारा सम्पादित 2020) घने जंगल और बंद छतरियों के अपने प्राकृतिक आवास में पायी जाती हैं। जिसमे से 25 भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में पायी जाती है। *मैगनोलिया ग्रैंडिफ्लोरा* लिनिअस संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र का स्थानिक है, तथा भारत में इसे पुनःस्थापित किया गया है। *मैगनोलिया ग्रैंडिफ्लोरा* लिनिअस मुख्यतः उत्तर पूर्व और दक्षिणी भारत में पाया जाता है, (कुमार, 2012) और व्यापक रूप से सड़कों के किनारे, पार्कों और घरेलू बगीचों में सजावटी पेड़ के रूप में इसको उगाया जाता है। देश के उत्तर-पूर्वी राज्यों जैसे अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर और मेघालय में मैगनोलिया की विविधता सबसे अधिक पायी जाती है। यह वंश अपने पेड़ या झाड़ियों आवासीय, एकान्तरिक पत्तियों, बड़ी संख्या में उभयलिंगी, गंधयुक्त तथा प्रोटोगायनस फूलों के लिए जाना जाता है, जो विशेष रूप से पंखुड़ियों की गतिविधियों को प्रदर्शित करने, प्रचुर मात्रा में परागकण पैदा करने के साथ-साथ बीटल परागण के लिए जाने जाते हैं। मैगनोलिया का सैपवुड क्रीमी सफेद होता है, जबकि हार्टवुड हल्के से गहरे भूरे रंग का होता है, जिसमें अक्सर हरे से बैंगनी-काले रंग की धारियाँ या धब्बे होते हैं।

वर्गीकरण व्यवहार: डैंडी (1927) ने इस कुल को 2 जनजातियों जिसमे लिरियोडेंड्रिया एकल विशिष्ट वंश लिरियोडेंड्रोन और मैगनोली जो कि मैगनोलिया, माईकेलिया, मिचेलिया और अन्य छह छोटे वंशो का प्रतिनिधित्व करता था, जिसमें बाद में उन्होंने 2 अन्य वंशो की वृद्धि भी की थी। मैगनोलिएसी परिवार का संशोधित वर्गीकरण हाल ही में प्रस्तुत किया गया था, जिसमें एल्मेरिलिया डैंडी, केमेरिया (पियरे) डैंडी, मैंग्लिटिया ब्लूम, मिचेलिया लिनिअस और पैचीलारनैक्स डैंडी जैसे अनेक वंश, मैगनोलिया लिनिअस में विलय हो गए (फिग्लर और नूटेबूम 2004)। वर्तमान में, मैगनोलिएसी के अंतर्गत दो वंश को मान्यता दी गई है, जिसमे मैगनोलिया लिनिअस की 240 प्रजातियाँ और लिरियोडेंड्रोन लिनिअस की 2 प्रजातियाँ उपलब्ध है।

मैगनोलिया ग्रांडीफ़्लोरा लिनिअस

विकासवादी महत्व : मैगनोलिएसी कुल को सबसे प्राथमिक फूलो वाले पौधों में से एक माना जाता है। इस कुल के अंतर्गत 80 मिलियन वर्ष पुराने जीवाश्म पाये गये हैं। मैगनोलिया वंश से संबंधित जीवाश्म तृतीयक और अंतिम मियोसीन में सामान्य हैं। (नोटेबूम, 1993; माई, 1995)। आणविक पद्धति के अनुसरण से प्राप्त सबूतों से पता चलता है कि मैगनोलियासी परिवार की उत्पत्ति और विविधीकरण 100 MYA तक फैला हुआ था। (अज़ुमा और अन्य, 2001)। इस कुल की प्रजातियों की विशेषता प्राथमिक फूलों से होती है जिसमें जायांग और पुंकेसर एक शंकु जैसी संरचना पर कुंडलित रूप से व्यवस्थित होते हैं, एवं उसमे वास्तविक पंखुड़ियों और बाह्यदलों का अभाव होता है। अपनी प्राथमिक उत्पत्ति के कारण, मैगनोलिएसी कुल के पौधे, विकास और पूर्ववर्ती जलवायु परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए मॉडल तंत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

औषधीय एवं आर्थिक महत्व: मैगनोलिया की प्रजातियों का उपयोग सजावटी, औषधीय, खाना बनाने हेतु, लकड़ी और बढ़ईगीरी कार्यों सहित कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है। ऐसा माना जाता कि मैगनोलिया की कई प्रजातियों में रोगनिरोधक, एंटीऑक्सीडेंट,

रोगाणुरोधी, सूजन-रोधी, एंटीएंजियोजेनिक, मूत्रवर्धक, अल्सर-विरोधी, एनाल्जेसिक, हेल्मिन्थोलिटिक और कैंसर विरोधी जैसे औषधीय गुण पाये जाते हैं। इस वंश की अनेक प्रजाति उधाहरणत: *मैगनोलिया चंपाका* (लिनिअस) बैलोन के बाद पीएरे, *मैगनोलिया डोल्टसोपा* (बुचनान-हैमिलटन के बाद डीसी) फिग्लर, *मैगनोलिया लैनुगिनोसा* (वालीच) फिग्लर और नोटेबूम तथा *मैगनोलिया पिटेरोकार्पा* रोक्स्बर्घ आदि का व्यावसायिक रूप से उपयोग विभिन्न प्रकार की सफल दवाएँ बनाने में किया जाता है। इस वंश अनेक प्रजातियां एल्कलॉइड्स, लिगनस, नियोलिगन्स, फ्लेवोनोइड्स, साथ ही टेरपेनोइड्स सहित जैविक रूप से सक्रिय यौगिकों की एक विस्तृत श्रृंखला का समृद्ध स्रोत हैं।

मैगनोलिया चम्पाका (लिनिअस) बैलोन के बाद पेईरेर

मैगनोलिया की कई प्रजातियों का उपयोग सदियों से पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में किया जाता रहा है। उदाहरण के लिए *मैगनोलिया चंपाका* की पत्तियों का उपयोग बुखार, सूजन, योनि संक्रमण, पेट का दर्द, कुष्ठ रोग और नेत्र विकारों के इलाज के लिए किया जाता है, और फूलों का उपयोग अपच, मतली और बुखार में किया जाता है। यह गुर्दे की बीमारियों में मूत्रवर्धक के रूप में भी उपयोगी है। ऐसा माना जाता है कि मैगनोलिया बहुत सी प्रजातियों की छाल भी एक विशेष प्रकार की औषधि के रूप में प्रयोग की जाती है, जो ऊर्जा की पूर्ति करती है, जो कि इसका अस्तित्व के लिए बुनियादी कार्य है। इसका उपयोग फंसी हुई गैस के कारण पेट में दर्द और छाती में बलग़म जमाव को रोकने के लिए भी किया जाता है। इसका उपयोग मनोवैज्ञानिक विकारों के साथ साथ प्लीहा और पेट में नमी के संचय से राहत के लिए होता है एवं अधिजठर भारीपन, उल्टी और दस्त में भी उपयोगी होता है।

मैगनोलिया की अधिकांश प्रजातियों में बड़े, सुगंधित और सुंदर फूल होने के कारण, सजावटी उद्देश्यों हेतु इसकी व्यापक रूप से खेती की जाती है। मणिपुर में, मैगनोलिया को आमतौर पर "उटाहम्बल" के रूप में जाना जाता है जिसका अर्थ है "वृक्ष कमल" और फूलों का उपयोग धार्मिक कार्यों के दौरान अनुष्ठानों में भेंट देने के लिए किया जाता है। मैगनोलिया के फूलों की सुगंध सुखद होने के कारण इसकी कई प्रजातियों जैसे *मैगनोलिया चंपाका*, *मैगनोलिया ग्रैंडिफ्लोरा* और *मैगनोलिया टेरोकार्पा* से आवश्यक तेल निकाले जाते हैं (कुंडू 2009) तथा इनका व्यापक रूप से इत्र और सौंदर्य प्रसाधन उद्योग, खाना बनाने के प्रयोजन में उपयोग किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश में, *मैगनोलिया कैंपबेली* और *मैगनोलिया डोलस्टोपा* की फूलों की कलियों को पीसकर, स्थानीय रूप से तैयार भोजन में मिलाया जाता है।

मैगनोलिया होड्ससोनी (हुकर. एफ. और थामसन) एच. कैंग

एकसमान बनावट, मध्यम भारी, संकोचन प्रतिरोधी, अत्यधिक आघात अवशोषक, और काफी कठोर होने के कारण, मैगनोलिया का उपयोग फर्नीचर बनाने के लिए भी किया जाता है। मैगनोलियाइन्सिगनी और मैगनोलिया कैवेना का उपयोग मेघालय के कई हिस्सों में जलाऊ लकड़ी के रूप में भी किया जाता है।

निष्कर्ष : मैगनोलिया समूह सबसे पुराने जीवित फूल वाले पौधों में से एक है। ये पौधों के विकासवादी, औषधीय और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके आवास के विनाश की तीव्र दर, आवास की गुणवत्ता में गिरावट और उनके व्यावसायिक मूल्यों के कारण शोषण से इन्हें अभूतपूर्व खतरों का सामना करना पड़ रहा है। बदलती वैश्विक जलवायु के साथ मिलकर, इस महत्वपूर्ण पादप समूह के संरक्षण के लिए प्रभावी उपायों की तत्काल आवश्यकता है।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 32-36 (2024)

बतुकम्मा महोत्सव: तेलंगाना राज्य में फूलों का उत्सव

के.रविकुमार, पी.हरिकृष्णा एवं एल.रासिंगम

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद

प्रस्तावना : तेलंगाना राज्य में मनाया जाने वाला बतुकम्मा महोत्सव एक अद्वितीय और रंग-बिरंगा त्योहार है, जिसे विशेष रूप से महिलाएं धूमधाम से मनाती हैं। तेलंगाना राज्य में अश्वयुज मास शुद्ध पद्यामी से नौ दिनों तक 'बतुकम्मा' उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव या सद्दुला उत्सव दशहरा से दो दिन पहले पड़ता है। तेलंगाना के अलग राज्य बनने के बाद बतुकम्मा को राजकीय उत्सव के रूप में मनाया जाता है। बतुकम्मा उत्सव तेलंगाना संस्कृति और परंपराओं का प्रतीक है। यह महोत्सव देवी गौरी (महालक्ष्मी) की पूजा के लिए समर्पित है और नवरात्रि के नौ दिनों के दौरान मनाया जाता है। बतुकम्मा का शाब्दिक अर्थ है "जीवन की देवी" और इसे फसलों की अच्छी पैदावार और परिवार की समृद्धि के लिए मनाया जाता है।

बतुकम्मा की उत्पत्ति और महत्व : बतुकम्मा की उत्पत्ति का इतिहास सदियों पुराना है। यह त्योहार मुख्य रूप से तेलंगाना की महिलाओं द्वारा मनाया जाता है और इसे महिला सशक्तिकरण के प्रतीक के रूप में भी देखा जाता है। इस महोत्सव के दौरान महिलाएं अपने घरों के आंगन में रंग-बिरंगे फूलों से सजी बतुकम्मा बनाती हैं और उसे जलाशयों में विसर्जित करती हैं। इस महोत्सव का मुख्य उद्देश्य प्रकृति और देवी माँ का सम्मान करना है।

बतुकम्मा की संरचना और सजावट : बतुकम्मा को विभिन्न प्रकार के फूलों और पौधों के भागों से सजाया जाता है। इसे बनाने के लिए सबसे पहले एक मिट्टी का ढांचा तैयार किया जाता है, जिसे बाद में फूलों से सजाया जाता है। बतुकम्मा को सजाने के लिए इस्तेमाल होने वाले प्रमुख फूल और पौधों के भाग निम्नलिखित हैं:

तालिका 1: बतुकम्मा तैयार करने के लिए उपयोग किए जाने वाले पौधों की सूची

वैज्ञानिक नाम	हिंदी नाम
सेना ऑरिकुलाटा	टांगेडु पुव्वु, तेलंगाना का राजकीय पुष्प
कुकुरबिता मैक्सिमा	गुम्माडी, कद्दू
टैगेटेस इरेक्टा	बैंथी
हिबिस्कस रोजा-सिनेंसिस	मंदारम, चिन्ना रोज़
इम्पैटिएंस बाल्सामाइना	गोरिंटा, रोज़
गोम्फ्रेना ग्लोबोसा	पोकाबंथी
इपोमिया नील	काटलापुला
कॉसमोस बाइपिनाटस	डेज़ी
सेलोसिया अर्जेंटीया	कोडिजुत्तू पूवुलु, प्लूम्ड कॉक्सकॉम्ब
सेलोसिया क्रिस्टाटा	कॉक्सकॉम्ब
क्राइसेंथेमम इंडिकम	चमंती
नेलम्बो न्यूसिफेरा	कमल
टैगेटेस पटुला	तुर्कबंथी, फ्रेंच मैरीगोल्ड
नेरियम ओडोरम	गन्नरू
हिबिस्कस माइक्रैंथस	नित्य मल्ले
क्रॉसंड्रा इन्फुंडिबुलिफोर्मिस	कनकंबरम

वैज्ञानिक नाम	हिंदी नाम
मिराबिलिस जलापा	40 क्लॉक प्लांट
रोजा इंडिका	गुलाबी
बरलेरिया प्रियोनिटिस	वज्रदंती, मुल्ला गोरंटा चेट्टू
कैथरांथस रोज़ियस	बिल्लगन्नरू, रोज़ी पेरीविंकल
क्लिटोरिया टर्नाटिया	शंखपुष्पी
कर्कुमा लोंगा	हल्दी, पसुपु
लुफा एक्यूटांगुला	रिज्ड लौकी/बीरा पुव्वु
ट्रेचिस्पर्मम एमी	अजवाइन/वामा पुव्वु
टेक्टोना ग्रैंडिस	सागौन, सागवान

उत्सव का समय और अवधि : बतुकम्मा का उत्सव आमतौर पर सितंबर-अक्टूबर के महीनों में दुर्गा पूजा के आसपास नौ दिनों तक मनाया जाता है। हर दिन की बतुकम्मा की एक अलग थीम होती है, जिसके अनुसार फूलों का चयन और सजावट की जाती है. इन नौ दिनों के नाम हैं :

एंगिली पुला बतुकम्मा **:** त्योहार का पहला दिन महा अमावस्या, भाद्रपद अमावस्या पर पड़ता है, जिसे तेलंगाना क्षेत्र में पेठारा अमावस्या के नाम से भी जाना जाता है।

पोहा बतुकम्मा **:** दूसरा दिन अकूला बतुकम्मा के नाम से जाना जाता है, यह आश्वयुज मासम (नवरात्रि कलश स्थापना) के पाद्यमी (पहले दिन) पर पड़ता है।

दाल बतुकम्मा **:** बतुकम्मा का तीसरा दिन प्रीति विद्या/आश्वयुज मासम के दूसरे दिन पड़ता है।

भीगे चावल बतुकम्मा **:** चौथा दिन सिंधुरा तीदिया गौरी/आश्वयुज मासम के तीसरे दिन पड़ता है।

अटला बतुकम्मा **:** पाँचवाँ दिन चतुर्थी/आश्वयुज मासम के चौथे दिन पड़ता है।

अलिगिना बतुकम्मा (बतुकम्मा तैयार नहीं किया गया) **:** छठा दिन ललिता पंचमी/आश्वयुज मासम के पाँचवें दिन पड़ता है।

वेपकायला बतुकम्मा **:** सातवां दिन दुर्गा षष्ठी/आश्वयुज मासम के छठे दिन पड़ता है।

*वेन्नामूड्डाला बतुकम्मा***:** आठवां दिन दुर्गा सप्तमी/आश्वयुज मासम के सातवें दिन पड़ता है।

सड्डुल बतुकम्मा (पेड्डा बतुकम्मा) **:** बतुकम्मा का नौवां दिन दुर्गा अष्टमी/आश्वयुज मासम के आठवें दिन मनाया जाता है, और दुर्गाष्टमी के साथ मेल खाता है।

बतुकम्मा की तैयारी : बतुकम्मा की तैयारी में महिलाएं विशेष उत्साह और उल्लास के साथ भाग लेती हैं। इसके लिए वे पहले सभी आवश्यक फूलों को इकट्ठा करती हैं और उन्हें साफ करती हैं। फिर वे एक गोलाकार ढांचा तैयार करती हैं और उस पर फूलों की सजावट करती हैं। बतुकम्मा को सजाने के बाद महिलाएं पारंपरिक गीत गाती हैं और नृत्य करती हैं।

बतुकम्मा का विसर्जन : बतुकम्मा महोत्सव के अंतिम दिन, जिसे "सद्दुल बतुकम्मा" कहा जाता है, महिलाएं बतुकम्मा को जलाशयों में विसर्जित करती हैं। यह प्रकृति के प्रति सम्मान और कृतज्ञता का प्रतीक है। इस दिन महिलाएं रंग-बिरंगे पारंपरिक परिधान पहनती हैं और सामूहिक रूप से बतुकम्मा को विसर्जित करती हैं।

सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व : बतुकम्मा महोत्सव का तेलंगाना की संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल धार्मिक महत्व रखता है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। इस महोत्सव के दौरान महिलाओं को सामूहिकता, सहयोग और एकता की भावना का अनुभव होता है। यह महोत्सव नई पीढ़ी को अपनी संस्कृति और परंपराओं से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

निष्कर्ष : बतुकम्मा महोत्सव तेलंगाना राज्य की एक अनमोल धरोहर है। यह महोत्सव फूलों की सजावट, पारंपरिक गीतों और नृत्य के माध्यम से प्रकृति और देवी माँ का सम्मान करता है। बतुकम्मा की तैयारी और विसर्जन की प्रक्रिया में महिलाएं विशेष उत्साह और उल्लास के साथ भाग लेती हैं। इस महोत्सव का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व अनमोल है और यह तेलंगाना की समृद्ध संस्कृति का प्रतीक है।

1. बतुकम्मा; 2. बतुकम्मा की तैयारी; 3. सेन्ना ऑरिकुलाटा; 4. सेलोसिया अर्जेन्टिया; 5. हिबिस्कस रोज़ासिनेंसिस; 6. नेलाम्बो न्यूसीफेरा; 7. मिराबिलिस जलापा; 8. टैगटेस इरेक्टा; 9. नेरियम ओलियंडर

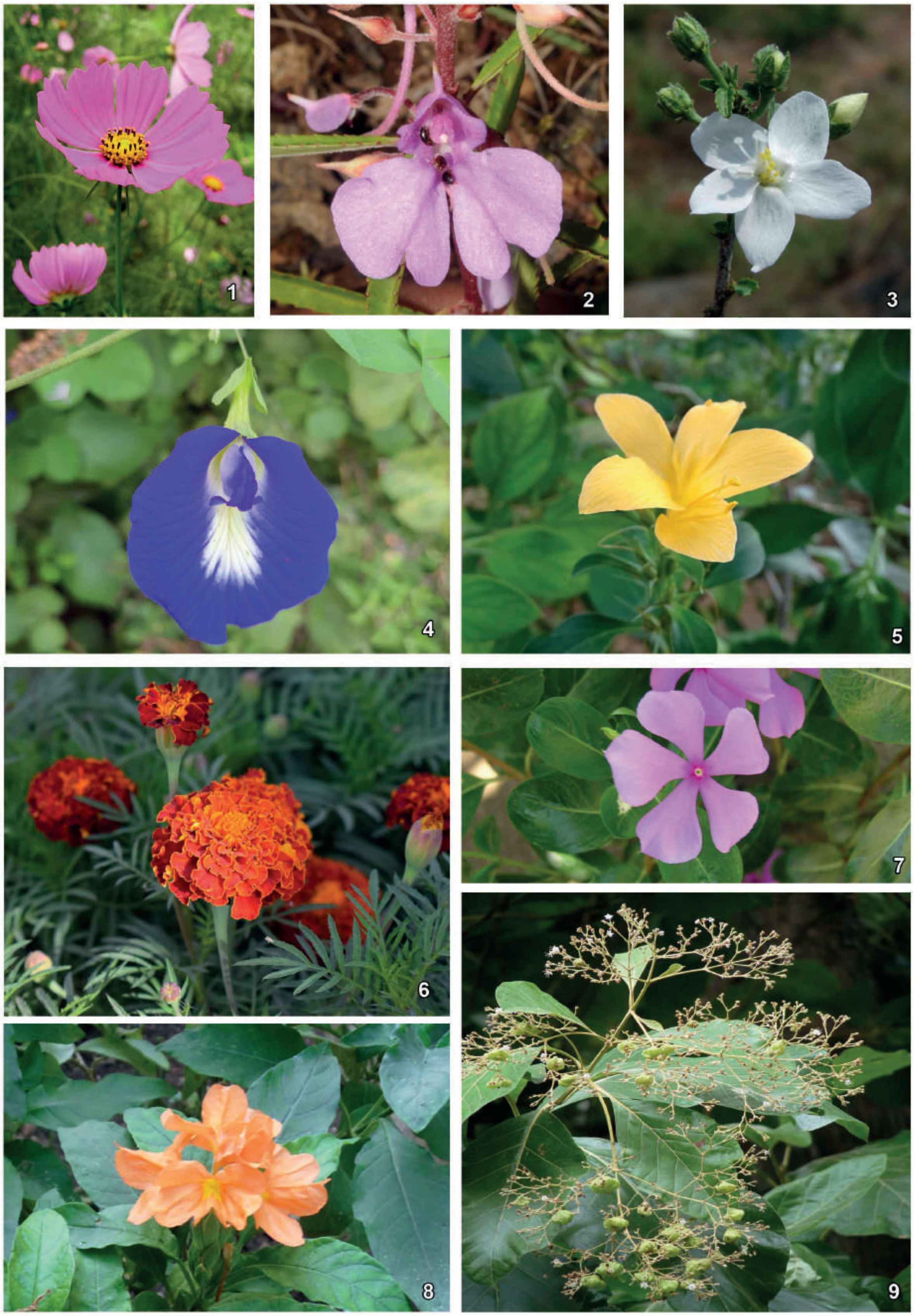

1. कॉसमॉस बिपिनाटस; 2. इम्पेतिन्स बाल्समिना; 3. हिबिस्कस माइक्रोन्थस; 4. क्लिटोरिया टर्नेटिया; 5. बार्लेरिया प्रियोनाइटिस; 6. टैगेटस पटुला; 7. कैथरैन्थस रोज़ियस; 8. क्रॉसेंड्रा इन्फंडिबुलिफ़ॉर्मिस; 9. टेक्टोना ग्रैंडिस

बतुकम्मा का उत्सव

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 37-39 (2024)

पश्चिम बंगाल के अलीपुरद्वार जिले में रहने वाले टोटो जनजाति के कुछ अल्पज्ञात पारंपरिक खाद्य व पेय

देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय, कोलकाता

'खाद्य' मानव शरीर के विकास और पोषण का मुख्य स्रोत है। इसे ऐसे किसी भी पदार्थ के रूप में परिभाषित किया गया है जो शरीर को विकसित करने के लिए उपभोग किया जाता है। मानव जाति की प्रगति के साथ साथ, आहार के प्रकार में भी बदलाव आ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक पुष्टिकर और स्वादिष्ट पके हुए खाद्य पदार्थों का सेवन किया जा रहा है। सुषम भोजन लेना मनुष्य की प्राथमिक चिंता है क्योंकि यह ऊर्जा उत्पन्न करता है, क्षतिग्रस्त ऊतकों की मरम्मत करके नई कोशिकाओं का निर्माण करता है और चयापचय को नियंत्रित करता है। मनुष्य जिस तरह से खाद्य ग्रहण करता है उसे भोजन की आदत कहा जा सकता है जिसमें भोजन के प्रकार, खाद्य पदार्थों का चयन और संग्रह, सेवन का समय और तरीका, व्यंजन विधि, भंडारण आदि शामिल है। शरीर की वृद्धि और विकास के साथ, खाद्य पदार्थों ने लंबे समय से दुनिया भर के अधिकांश समुदायों के धार्मिक जीवन में लगातार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। टोटो समुदाय मोंगोलोएडमूल के आदिम इंडो-भूटानी जनजाति है, जो पश्चिम बंगाल के अलीपुरद्वार जिले के मदारी हाटब्लॉक के अंतर्गत एक छोटे से पहाड़ी गॉव 'टोटोपाड़ा' में रहते हैं। पिछली जनगणना (2011) के अनुसार, टोटो जनजाति की जनसंख्या लगभग 1387 है, जिसमें 737 पुरुष और 650 महिलाएँ हैं। वे टोटोपाड़ा के छह गांवों जैसे पंचायत गांव, पूजागांव, मंडलगांव, सुब्बागांव, मित्रांगगांव और दुमची गांव में रहते हैं। पारंपरिक खाद्याभ्यास टोटो समुदाय की रीढ़ है जो अमूर्त विरासत का एक हिस्सा व समाज की सांस्कृतिक विविधता का भी प्रतीक है। कृषि और पशुपालन टोटो समुदाय की आय के प्रमुख स्रोत है। अधिकांश कृषि भूमि में को दो बाजरा, धान, हल्दी, सुपारी, अदरक, टैपिओका, शकरकंद, आलू, मक्का और कुछ पत्तेदार सब्जियाँ, रेपसीड आदि की खेती की जाती है। लगभग हर घर में एक किचन गार्डन बना हुआ होता है जहाँ रोजमर्रा के उपयोग की सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इस जनजाति के पारंपरिक खाद्य और पेय सरल और स्वस्थ है, जो दैनिक जीवन केसाथ-साथ त्योहारों में भी बनाए जाते हैं। इस संप्रदाय के प्रमुख खाद्य पदार्थ मरवा के चावल, बाजरा की रोटी, चूड़ा, पत्तेदार सब्जियां, दूध, दही, सूअर, बकरी का मांस, मुर्गा, मछली आदि है। इसके अलावा धार्मिक या सामाजिक समारोहों में विभिन्न प्रकार के विशेष व्यंजन भी पकाये जातें हैं, जिन्हें पकाने के लिए आवश्यक खाद्य सामग्री का वर्णन नीचे तालिका मे दिया गया है (**तालिका 1**):

तालिका 1: टोटो समुदाय द्वारा धार्मिक या सामाजिक समारोहों में पकाए गए विशेष व्यंजन/खाद्य समूह

क्रम सं	व्यंजन	व्यंजन विधि
1.	शेलरोटी	यह पकवान चावल के आटे, मैदा, सूजी और गुड़ से बनाया जाता है। त्यौहार, शादी या सामाजिक समारोह में यह भोजन परोसा जाता है।
2.	लोट्टो	चावल केआटे से बना उबला हुआ पिठा जो उत्सव में बांटा जाता है।
3.	डु	टाडो का उबलता हुआ तना जो मरवा के चावल के साथ खाया जाता है।
4.	डुइशि	टैपिओका का जड़ उबालके या भूनके चावल के साथ खाया जाता है।
5.	लिंगकांडा	ताडो का उबला हुआ प्रकंद जो तिल, टमाटर और मिर्ची की चटनी के साथ खाया जाता है।
6.	मक्के का चावल	यह मक्के के दाने से पकाए जाते हैं।
7.	मेम्बेकी कोबेरिंगया मरवा की रोटी	यह कोदोबाजरा के बीज कोपीस के बनाए गए आटे से पकी हुई रोटी।
8.	गुआई- पराई-चुराई	सभी अवसरों में इसे भोजन के बाद परोसा जाता है।
9.	छेका	यह एकक्षारीय तरल है जिसका प्रमुख अंश प्रकंद और मूसाबाल्बिसियाना के छद्मतना है।
10.	पेल्का	विभिन्न प्रकार की हरी सब्जियों जैसे की सजनापाता, पुईपाता, हरीमिर्च, लहसुन को क्षारीय तरल (छेका) के साथ मिलाकर उबाल के बनाया जाता है।

11.	फ़ोकटानी	यह एक तेलबिहीन पारंपरिक खाद्य है जो कचू शाक, प्याज, लहसुन, हरीमिर्च, छेका, चिउरा या निगेहू के चूर्ण को उबाल के बनाया जाता है। यह एसिडिटी, अपच को कम करने में मदद करता है और स्वाद बढ़ाने में मदद करता है।
12.	फोकदोई	इस पकवान की मुख्य सामग्रियों में चावल के पाउडर, अदरक, लहसुन का पेस्ट, हरी मिर्च, कचु की पत्तियां, छेका आदि प्रमुख है।

'ईयू': एक विशेष प्रकार का हल्का मादकजातीय पेय 'ईयू' टोटो समुदाय में व्यापक रूप से प्रचलित है जो हर रोज़ या स्थानीय त्योहारों में या सामाजिक व सांस्कृतिक जमाव में सेवन किया जाता है। यह पानीय 'मरूया' व कोदोबाजरे के बीज, चावल के आटे और कुछ विशेष पौधों से घरेलू व प्राकृतिक किण्वन प्रक्रिया मे तैयार किया जाता है। 'ईयू' की तैयारी मे पहले 'मोआ' तथा 'मोई' बनाया जाता है जो प्राकृतिक किण्वन प्रक्रिया मे सक्रिय अनुघटक के रूप में काम करता है। 'मोआ' बनाने के लिए 12-15 घंटे भिगोए हुए चावल के साथ 4-5 जंगली मिर्च, पाँच (05) ग्राम विभिन्न पौधे जैसे कोदोबाजरे (इलूसिन कोराकाना) के बीज, अंकु (ओरिज़ा सैटिवा), हतिपाइलो[(टेरोस्पारमम असरीफ़ोलीयाम], मकाबी[ड्राईमारिया करडाटा], चेतवर (प्लमबागो जेलानिका), गजमुरि (कैपसिकम अनुअम) वछांगरा (आथेरिअम निग्रिपेस)कीजड़, पत्तियाँ, फल, बीज आदि मिश्रित करके मोटरयुक्त एक बड़ी लकड़ी के ड्रम में पानी डालकर मिश्रित किया जाता है व मिश्रण को 5 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है। कवक के संक्रमण को रोकने के लिए बाजरे के बीजों पर 'मोआ' के साथ चारकोल की धूल छिड़की जाती है एवं स्थानियों 'हातीपोइला' की बड़ी पत्तियों से ढक दिया जाता है और कम से कम एक सप्ताह तक धूप में सुखाया जाता है। 'मोआ' मिश्रित बाजरे के बीजों को एक बड़ी मिट्टी के पात्र तथा 'मोनसोई ' में कम से कम 45 मिनट तक उबालने से किण्वन प्रक्रिया शुरू होती है। अतिरिक्त पानी को बांस से बनी विशेष प्रकार की छलनी 'जितुंग' से निकाल दिया जाता है और उबले हुए मिश्रण को सूती के कपड़े से ढककर एक सप्ताह के लिए अंधेरी जगह पर रख दिया जाता है। मीठी मादकिय सुगंध और मिश्रण में झाग बनने के साथ किण्वन प्रक्रिया पूरी होती है। ऐसे बना हुआ पेय 'ईयू' को टोटो समुदाय के सभी अवसरों व त्योहारों में बांस से बने गिलास 'पोइपा' में परोसा जाता है। घरेलू तकनीक मे 'ईयू' तैयार करने की पद्धति चार्ट मे दिखाई गई है। (**चार्ट-1**) हल्के उत्तेजक गुणों के अलावा, यह पारंपरिक पेय मधुमेह, बुखार, खांसी की इलाज मे विशेष भूमिका पालन करते है।

अन्य जनजातियों की तरह, टोटो समुदाय भी अपने भोजन की परम्पराओं का अनुपालन करते आ रहे हैं जो उनकी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखा गया है। पिछले दशक से ये गाँव शिक्षात्मक और पर्यटन स्थल के रूप में विकसित होने से, स्थानीय खाद्य पदार्थों के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर बने पेय की मांग कई गुना बढ़ गई है। पारंपरिक खाद्य पदार्थों और स्थानीय पेय 'ईयू' की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, इसकी गुणात्मक सामग्री और किण्वन प्रक्रिया का मानकीकरण निवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के उन्नयन के लिए मौलिक है। अलकोहॉल की मात्रा कम (1-3%) और कई अच्छे बैक्टीरिया होने के कारण, 'ईयू' का सेवन ऊर्जा प्रदान करने वाले पेय के रूप में किया जा सकता है। हालाँकि, चूंकि संपूर्ण शराब बनाने की विधि तकनीकी नियंत्रण और उचित स्वच्छता प्रक्रिया के बिना अपनाई जाती है, इसलिए 'ईयू' के सेवन से गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। पारंपरिक पेय 'ईयू' के बड़े पैमाने पर उत्पादन और व्यावसायीकरण के लिए जैव प्रौद्योगिकी तरीकों को लागू किया जा सकता है, जिससे टोटो समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति विकसित हो सकती है।

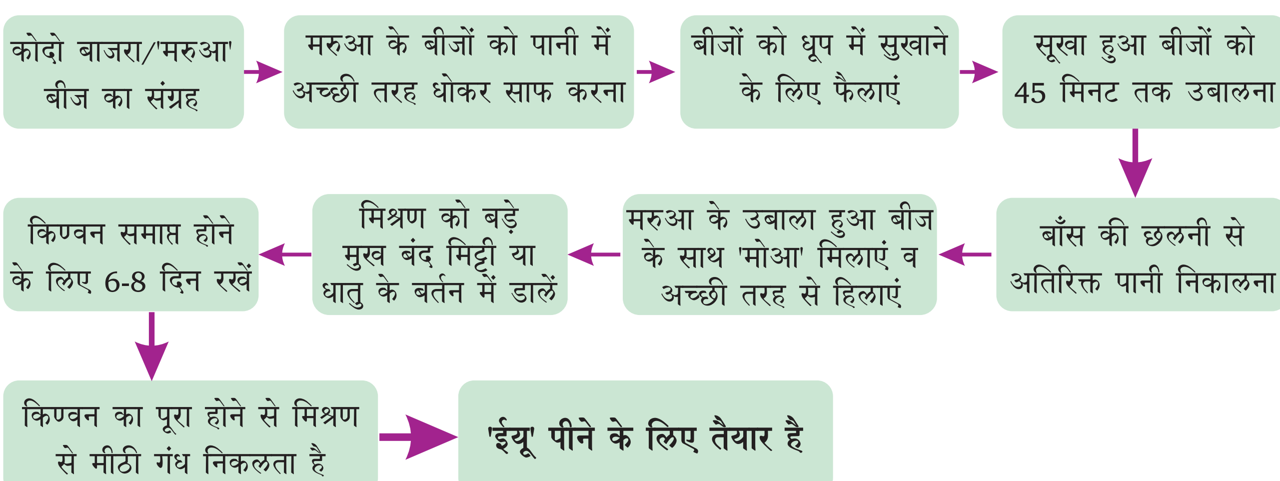

चार्ट-1: घरेलू पद्धति मे 'ईयू' पेय की तैयारी

चित्र 1. डु

चित्र 2. डुइशि

चित्र 3. मक्के का चावल

चित्र 4. मेम्बे को कोबेरिंग

चित्र 5. लिंग कांडा

चित्र 6. लोट्टो

चित्र 7. ईयू

चित्र 8. टोटो समुदाय के पारंपरिक भोजन की दुकान

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 40-41 (2024)

राजस्थान की दो उपयोगी बेल : जलजामिनी एवं पीलवान

संजय मिश्रा, रवि प्रसाद एवं विनोद मैना

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

पृथ्वी पर मौजूद सभी वनस्पतियां किसी न किसी रूप में उपयोगी होती हैं। मनुष्य जब तक उसके महत्व से अनभिज्ञ रहता है तभी तक वह वनस्पति हमारे लिए अनुपयोगी होती है। खरपतवार एवं जहरीले पौधों की श्रेणी में आने वाले पौधे भी उनकी उपयोगिता का ज्ञान होने पर महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

जल-जामिनी एवं पीलवान भी इसी प्रकार के पौधे है जो बेल के रूप में जंगलों की झाड़ियों तथा खेतों के आसपास की खाली पड़ी जमीन में पाया जाता है, वर्षा काल में अंकुरण के पश्चात इसकी बेल तेजी से अपने पास मौजूद किसी सहारे से लिपटकर अपनी शाखाओं को फैलाना प्रारंभ कर देती है। इसका भौगोलिक वितरण लगभग पूरे भारत में है लेकिन इसका घनत्व शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में काफी अधिक है।

जलजामिनी : जलजामिनी का वैज्ञानिक नाम "काकुलस हिर्सुटस" है। यह मेनीस्पर्ममेसी कुल का सदस्य है। यह पौधा संस्कृत में अम्बष्ठ, दीर्घकंद, दीर्घवल्ली, गारूडी, महामूल एवं पालालगरूड़ी, हिन्दी और पंजाबी में फरीदबूटी बांग्ला मे हुएर, कन्नड़ में दगाड़ी बल्ली, कोंकणी और मराठी में वासनवेल उड़िया में मुसकानी नाम से जाना जाता है। पौधे के तने व पत्तियों पर मौजूद रोएं (बाल) इस प्रजाति के वैज्ञानिक नामकरण का प्रमुख कारण है [हिर्सुटस अर्थात रोमल(रोएयुक्त)]। युवावस्था में पत्तियां घनी मखमली होती हैं, जो प्रौढ़ावस्था में घटने लगती हैं। इस पौधे की पत्तियों को यदि रात भर जल में भिगोकर छोड़ दिया जाए तो सुबह जल आंशिक रूप से जेलीनुमा होकर जमा हुआ दिखाई देता है, इस कारण इसे जलजामिनी भी कहते है। इसकी पत्तियों के आकार में काफी विविधता पाई जाती है ये लगभग 2-8 सेमी लंबी, 2-6 सेमी चौड़ी, अण्डाकार, आयताकार व 3-5 खंडदार होती हैं। जबकि मादा पुष्प 1 से 3 के समूह में पाए जाते हैं। इसका पुष्पन काल दिसंबर से मार्च है। जलजामिनी के फल प्रारंभ में हरे एवं पकने पर गाढ़े बैंगनी रंग के हो जाते हैं। इसके फलों के रस से नीले बैंगनी रंग की स्याही बनती है।

काकुलस हिर्सुटस – क - पेड़ पर चढ़ी लता, ख - पुष्प, ग - फल

रासायनिक संघटन : जलजामिनी के पौधे में आवश्यक तेल, βसिटोस्टेरोल, गिन्नोल, ग्लाइकोसाइड्स, स्टेरोल्स और एल्कलॉइड्स पाये जाते हैं। पत्तियों के प्रारंभिक फाइटोकेमिकल विश्लेषण में एल्कॉइड, फेनोलिक यौगिकों, फ्लेवोनोइड्स, ग्लाइकोसाइड और कार्बोहाइड्रेट की उपस्थिति पायी गयी है। तने और जड़ के फाइटोकेमिकल अध्ययन में बिस-बेजाइल आइसोक्विनोलिन अल्कालॉइड जैसे शाहीनिन, कोहिरसिनिन, हिरसुटीन, जैमटीनिन, जैमिटाइन-एन-ऑक्साइड, कोहिरसिटाइन की उपस्थिति पायी गयी है। जलजामिनी की पत्तियों में मौजूद अल्कालॉइड्स, आइसोट्रिलोबाइन, सिरिंजारेसिनोल, डीरिलोबिन और डीएल-कोक्लोराइन हैं। जड़ो में डी-ट्रिलोबाइन कोक्लोरीन, स्टेरोल्स और रेजिन पाये जाते हैं।

औषधीय उपयोग : आयुर्वेद में जलजामिनी को पातालगरुड़ी के रूप में जाना जाता है। यह पित्त और जलन को कम एवं रक्त को समृद्ध करता है। मूत्र प्रणाली के रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति के अनुसार यह एंटीपयारेटिक टॉनिक है, प्यास कम करती है, और ट्यूबरकुलर ग्रंथियों संबंधित समस्यायों में उपयोगी है। यह मामूली चोटों में प्राथमिक उपचार के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली जड़ी-बूटी है । यह कफ और वात दोषों को कम करता है।

पारंपरिक औषधीय प्रणाली में जलजामिनी की जड़ों और पत्तियों को आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से औषधीय उद्देश्य के लिए उपयोग किया जाता है। जलजामिनी की कड़वी जड़ का रेचक, शांतिदायक, टॉनिक मूत्रवर्धक, मलेरिया में, जोड़ो के दर्द, त्वचा रोग, कब्ज और गुर्दे की बीमारी के उपचार में प्रयोग किया जाता है। जलजामिनी की पत्तियों का रस पानी में श्लेषम बनाता है जिसे आंखों की समस्याओं प्रुइगो, एक्जिमा, इम्पेटिगो में ठंडी दवा के रूप में बाहरी रूप से उपयोग किया जाता है। नेत्रपीड़ा व कंजंक्टिवाइटिस के उपचार हेतु ताजी पत्तियों के पेस्ट को पुतलियों के ऊपर रात्रि में बांधा जाता है। पत्तियों के रस को चीनी के साथ मीठा कर गोनोरिया के उपचार में उपयोग किया जाता है। जड़ के काढ़े को काली मिर्च के साथ मिला कर पुरानी गठिया के उपचार में प्रयोग किया जाता है।

फेनोलिक यौगिक की उपस्थिति के कारण इस पौधे का उपयोग रोगाणुरोधी के रूप में किया जाता है, टैनिन और ग्लाइकोसिडिक संयोजन में मौजूद फ्लेवोनॉइड्स संक्रमण निवारक और घाव को भरने में सहायक है। अतः इसका उपयोग घाव, जलने और अल्सर के उपचार में किया जाता है। कुटी हुई ताजी पत्तियों को पानी के साथ पेचिश के उपचार हेतु पिलाया जाता है। इस पौधे का उपयोग विशेषकर ऊंट व बकरियों के लिए अच्छे चारे के रूप में किया जाता है।

पीलवान : पीलवान का वैज्ञानिक नाम 'काकुलस पेंडुलस' है, यह पौधा किसी सहारे की मदद से आसपास के वृक्षों जैसे खेजड़ी, हिंगोट, अकेसिया, बैलेनाइटिस आदि पर फैल जाता है, धीरे धीरे इसके तने मोटे लकड़ी के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, इसे राजस्थानी में पीलवान, हिंदी में विलुम्बी, गुजराती में परवटी, सिंधी में उल्लारबिलर और तेलुगु में दशरटेजी नाम से जाना जाता है। इसकी चिकनी पत्तियां नीचे की तरफ लटकी हुई रहती है जो पूरे वर्ष भर हरी रहती है। पकेफलों के रस से टिकाऊ बैंगनी रंग मिलता है जो स्याही के रूप में और आदिवासियों द्वारा कपड़े की रंगाई के लिए उपयोग किया जाता है।

इसकी पत्तियां सरल, चिकने किनारी वाली लैंसियोलेट होती है। इसमें एकलिंगी सूक्ष्म हरिताभ पुष्प पाए जाते हैं। पुष्पण लगभग पूरे वर्ष होता है। फल गहरे लाल रंग के होते हैं। फल खाने योग्य होते हैं और इनसे नशीला पेय बनाया जाता है।

रासायनिक संघटक : इस पौधे की फाइटोकेमिकल विश्लेषण से पता चला है कि इसमें काफी अच्छी मात्रा में अल्कलॉइड, कार्बोहाइड्रेट, फाइटोस्टेरॉल, सैपोनिन, प्रोटीन और म्यूसिलेज जैसे विभिन्न फाइटोकोनस्टिटुएंट्स मौजूद हैं। औषधीय रूप से महत्वपूर्ण रसायन जैसे डीहाइड्रोकोहाटीन, 12-ओ-मिथाइल डीहाइड्रोकोहाटीन, 5-हाइड्रॉक्सीपैटलाइन, 5-हाइड्रोक्सिल्टोबाइन, 12-ओ-मिथाइलकोहाटीन, बिस्बेनज़ाइलिसोक्विनोलिऑडाईनिन एल्कलॉइड, जिसमें कॉस्क्यूलिन, कॉक्सोलिन, कॉस्कयूलिनिन, पेंडुलिन, टेट्राडीन आदि इसमें पाये गये हैं।

औषधीय उपयोग : पौधे के प्रत्येक भाग को पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में काफी गुणकारी माना गया है। चीनी के साथ पतला पत्तियों का रस एक अच्छा टॉनिक है, पत्तियों के रस में श्लेष्म होता है जिसे पानी के साथ मिलाने से एक जेली बनती है जिसे त्वचा के रोगों में लगाया जाता है। इसे सुजाक की दवा में शीतलक के रूप में उपयोग किया जाता है। पत्तियां ज्यादातर घाव भरने, नाक से खून बहने, महिलाओं के मासिक धर्म चक्र को नियमित करने के लिए प्रयोग की जाती है। कब्ज में पत्तियों के काढ़े का उपयोग किया जाता है।

इसकी जड़ो का उपयोग मासिक धर्म की समस्याओं के उपचार और मूत्रवर्धक के रूप में सुप्रसिद्ध है। जड़ और पत्तियों का उपयोग पीलिया, पीत ज्वर, कुष्ठ, उपदंश, सूजन के उपचार में किया जाता है। तने की छाल और जड़ की छाल के काढ़े का आंत परजीवी और सुजाक के उपचार में उपयोग किया जाता है।

काकुलस पेंडुलस- क - पेड़ पर चढ़ी लता, ख - पुष्प, ग - फल

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 42-43 (2024)

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में एक आत्मघातक वृक्ष : सर्बेरा एल. (एपोसिनेसी)

अनिल कुमार मिडिगेसी, पंकज अरविंद ढ़ोले, गौतम अनुज एक्का, प्रकाश होरो, महादेवकुमार एस., एवं लाल जी सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर

सर्बेरा एल. एपोसिनेसी कुल का मध्यम आकार का वृक्ष है। जिसे सामान्य भाषा में आत्मघातक वृक्ष एवं समुद्री आम नाम से जाना जाता है। इस पौधे के औषधीय एवं घातक गुणों का उल्लेख विविध औषधीय प्रणालियों में मिलता है। आधुनिक शोध के आधार पर इसमें मिलने वाला सर्बेरिन नामक रसायन ही इस पौधे के आत्मघातक गुणों के लिए उत्तरदायी है। एपोसिनेसी कुल के इस पौधे का भौगोलिक वितरण सामान्यतः तटीय क्षेत्र वाले भूभाग में अंकित है। यह सामान्यतः उष्णकटिबंधीय एशिया, ऑस्ट्रेलिया, मेडागास्कर और विभिन्न भारतीय और प्रशांत महासागरीय तटीय क्षेत्रों में पाया जाता है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह भारत का एक वह तटीय क्षेत्र है जो अपनी आधुनिक एवं प्रचुर पादप विविधता के लिए जाना जाता है जहाँ पर *सर्बेरा* एल. पर कई और जातियों का वितरण अंकित है। *सर्बेरा ओडोलुम* और *सर्बेरा मैंघास* ये दोनों जातियों का वितरण इन द्वीपों में बहुत ही सीमित क्षेत्रों में मिलता है। प्राकृतिक वास में ये दोनों जातियाँ सरलतापूर्वक एक दूसरे से विभेदित होते हैं जैसे आम के आकार वाले फल *सर्बेरा मैंघास* की पहचान गुण तथा गेंद के आकार वाले फल का वृक्ष *सर्बेरा ओडोलुम* की पहचान बनाता है। युवा फल हरे रंग के होते हैं और परिपक्व होने पर गुलाबी या लाल तथा वजन में बहुत हल्के होते हैं। पेड़ से गिरने के एक या दो दिन बाद फल का बाहरी छिल्का फटी हुई चमकदार परत के रूप में आसानी से अलग हो जाते हैं। हल्के वजन के कारण फल आसानी से तैरते हैं और पानी के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित हो जाते हैं और बीज प्रकीर्णन में उपयोगी होते हैं। फलों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जाता है चमकदार बीजकोष मध्य जालीय कोष और आंतरिक एंडोकार्प। फल के बीच में एक बड़ा बीज होता है। मेसोकार्प मात्रा में भारी रेशेदार वजन में हल्का होता है इसलिए उत्प्लावन जल भंडारण के लिए उपयोगी बीज अंकुरण के लिए जल अवशोषण और विकासशील भ्रूण के लिए माइक्रोक्लाइमेट बनाना मेसोकार्प के मुख्य कार्य हैं। *सर्बेरा* में बीज के अंकुरण की प्रक्रिया काफी दिलचस्प है फल गिरने के बाद यदि यह पानी में गिरता है तो यह निश्चित दूरी तय करता है और कीचड़ वाले क्षेत्रों में रह जाता है या यदि यह जमीन पर गिरता है तो अनुकूल स्थिति आने का इंतजार करता है। उपयुक्त परिस्थितियाँ आने पर मेसोकार्प पर्याप्त पानी सोख लेता है और बीज को आत्मसात कर लेता है। बाद में बीज मेसोकार्प की तरह स्पंज से अंकुरित होने लगते हैं जिससे तापमान भी संतुलित रहता है जो भ्रूण के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मेसोकार्प नन्हें पौध अवस्था तक पौधों से जुड़ा रहता है उसके बाद यह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है और स्वयं ही पौधों के लिए भोजन के रूप में कार्य करता है। यह कुछ हद तक आम की जीवंत स्थिति के समान है। प्रत्येक फल के बीच में एक बड़ा बीज होता है। *सर्बेरा मैंगस* का फल सामान्यतः *सेरेब्रा ओडोलेम* की अपेक्षा छोटा होता है। इसके बीज में सर्बेरिन नामक घातक जहरीले रसायन की उपस्थिति का उल्लेख विविध अध्ययनों में मिलता है। अप्रकाशित अध्ययनों में ऐसा उल्लेखित है कि एक बीज एक इंसान को मारने के लिए काफी है। श्रवण क्रिया पर विष का प्रभाव हृदय गति रुकने का कारण बनता है। प्राचीन काल में इन द्वीपों की जनजातियाँ आत्महत्या के लिए इसके बीज का उपयोग जहर के रूप में आत्महत्या के लिए करते थे। इसके बीजों की उपयोगिता हत्या, जैव-कीटनाशक, कीट विकर्षक और चूहे के जहर के रूप में भी उल्लेखित है। तटीय क्षेत्र के मछवारों द्वारा इसके फल का उपयोग मछलियों को पकड़ने में किया जाता है। पौधे से दूधिया सफेद लेटेक्स निकलता है जो अत्यधिक विषैले गुणों से युक्त माना जाता है और इसके प्रतिकूल प्रभाव के रूप में अंधापन, स्थायी घाव जैसे विकार का उल्लेख भी मिलता है।

चित्र 1. सर्बेरा मैंघास

चित्र 2. सर्बेरा मैंघास

चित्र 3, 4. सर्बेरा ओडोलुम

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 44-44 (2024)

अंडमान निकोबार द्वीप समूह का जंगली खाद्य मशरूम

महादेवकुमार एस.[1], श्रीधर के आर[2], पंकज अरविंद ढ़ोले[1], प्रकाश होरो[1], अनिल कुमार मिडिगेसी[1], गौतम अनुज एक्का[1], लाल जी सिंह[1],

1भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अण्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर
2 मैंगलूर विश्वविद्यालय, कोणाजे मैंगलूर कर्नाटक

मशरूम को सामान्यत: कुकुरमुत्ता के नाम से जाना जाता है जो प्राकृतिक रूप से वर्षा ऋतु के समय सड़ी गली लकड़ियों या आर्द्र एवं छायादार सड़े गले पदार्थयुक्त भूभागों में उगते हुए देखा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में अंडमान निकोबार द्वीप समूह में विद्यमान जंगली खाद्य मशरूम पर संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह भारत का वह भौगोलिक भूभाग है जहाँ प्रकृति ने अद्वितीय पादप विविधता को एक अनुपम भेंट के आच्छादित किया है। पादप विविधता में मशरूम वह पादप समूह है जो हरित लवक रहित पादप वनस्पति कवक के अंतर्गत रखा गया है जो कि विविध पौष्टिक अवयवों से परिपूर्ण होता है। लाभकारी गुणों के साथ साथ कवक पादप समूह में ऐसे भी मशरूम का उल्लेख मिलता है जो हानिकारक रासायनिक पदार्थों से युक्त हैं जिनके भयंकर प्रतिकूल प्रभाव का उल्लेख मिलता है जैसे एमेनिटा फिल्वायडस नामक मशरूम को डेथ चेयर की संज्ञा दी गई है और इसमें मिलने वाले हानिकारक रासायनिक पदार्थों के गंभीर प्रतिकूल प्रभाव जैसे मृत्यु आमंत्रण का उल्लेख मिलता है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिक दल ने सर्वेक्षण के दौरान दो जंगली खाद्य मशरूम जातियों (टर्मिटोमाइसिस माइक्रोकार्पस (बर्क. और ब्रूम.) आर. हेम, कैल्वेटिया साइथिफोर्मिस (बॉस्क.) मॉर्गन का वितरण खोज निकाला है, दक्षिण अंडमान के विविध जंगलों के सीमित क्षेत्रों में इनका वितरण पाया जाता है। इन द्वीपों के अलावा इसका वितरण मुख्य भूमि के ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के कुछ जंगलों में भी उल्लेखित है। सामान्यतया खाद्य मशरूम पोषण की दृष्टि से बहुत ही लाभकारी माना जाता है।विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया कि द्वीपों में पाई जाने वाली इन जंगली मशरूम की जातियों में विविध पोषक तत्व की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

वर्षा ऋतु में उगने वाले इन जंगली खाद्य मशरूम का उपयोग जंगलों में निवास करने वाले विभिन्न आदिम जनजातियों द्वारा किया जाता है। पोषण की दृष्टि से जंगलों में निवास करने वाले आदिम जनजातियों के लिए मशरूम एक रूचिकर खाद्य पदार्थ है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह के जंगलों में छः आदिम जनजातियाँ (जारवा, ओंगी, ग्रेट अंडमानी, सेंटिनेलीज, शोम्पेन और निकोबारी) निवास करते हैं । इनमें से निकोबारी जनजाति समाज की मुख्य धारा से जुड़ कर एक सभ्य समाज के रूप में अपने को अनुकूलित कर लिया है। टर्मिटोमाइसिस माइक्रोकार्पस (बर्क. और ब्रूम.) आर. हेम, कैल्वेटिया साइथिफोर्मिस (बॉस्क.) मॉर्गन नामक जंगली खाद्य मशरूम राँची विस्थापित समुदाय के लोगों में इसकी उपयोगिता खाद्य पदार्थ के रूप में करते हैं जो यह इंगित करता है कि जंगलों में निवास करने वाले आदिम जनजातियों का संबंध जंगली खाद्य मशरूम से हो सकता है जिसकी पुष्टि हेतु जातीय वनस्पति अध्ययन के अंतर्गत मशरूम की उपयोगिता पर गहन अध्ययन की आवश्यकता प्रतिबिम्बित होती है।

भारत के विविध भौगोलिक क्षेत्रों में पाये जाने वाले विविध जंगली खाद्य मशरूम स्थानीय बाज़ारों में बिकते हुए पाए गए हैं जो स्थानीय लोगों के लिए आमदनी के एक स्रोत के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। अतःप्रस्तुत लेख के माध्यम से लेखक यह संदेश देना चाहते हैं कि भविष्य में मशरूम का आदिम जनजातियों द्वारा विविध रूपों में उपयोगिता का सर्वेक्षण एवं प्रलेखन एक महत्वपूर्ण दिशा को गति देगा जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण परिणाम दे सकता है। खाद्य पदार्थों के अलावा विविध मशरूम की उपयोगिता औषधीय क्षेत्रों में भी उल्लेखित है।

राँची विस्थापित जनजाति समुदाय द्वारा जंगली खाद्य मशरूम (*टर्मिटोमाइसेस माइक्रोकार्पस* (बर्क. और ब्रूम.) आर. हेम, *कैल्वेटिया साइथिफोर्मिस* (बॉस्क) मॉर्गन) का खाद्य पदार्थ के रूप में संग्रह

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 45-46 (2024)

एनाफेलिस बुसुआ : हिमालय का एक औषधीय पौधा

प्रिया सिंह कुशवाहा एवं अभिषेक भट्टाचार्जी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

यह कहानी एक ऐसे पौधे की है, जिसकी खोज पहली बार वर्ष 1802 ई. में एक प्रसिद्ध स्कॉटिश सर्वेक्षक एवं वनस्पतिशास्त्री फ्रांसिस बुकानन-हैमिल्टन द्वारा की गयी। हिमालय क्षेत्र में वनस्पति-आधारित चिकित्सा के ज्ञान का एक शानदार इतिहास है। इसका सबसे प्रमुख कारण है, यहाँ पाये जाने वाली उर्वर जैव-विविधता। इसी औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पति-विविधता से आकर्षित होकर बुकानन ने हिमालय की गोद में बसे देश नेपाल के 'सुएम्बु' से एक पौधे को खोज निकाला। जिसे, वहाँ रहने वाली नेवारिस जनजाति 'बु-स्वा' के नाम से बुलाती थी। वर्तमान में यह जगह काठमांडू में स्थित स्वांभुनाथ नाम से प्रचलित है। वहीं से हुआ *नाफेलियम बुसुआ* प्रजाति का नामकरण इसके कई साल बाद 1838 ई. में ए.पी.डी. कैंडोल, जो कि एक स्विस वनस्पति शास्त्री थें, इन्होंने '*एनाफेलिस*' नामक वंश में इसे सम्मिलित कर लिया।

एनाफेलिस बुसुआ नामक यह जंगली पौधा, सूरजमुखी परिवार (एस्टेरेसी) के वंशज *एनाफेलिस* की एक प्रजाति है। अंग्रेजी में 'पर्ली एवरलास्टिंग' (मोतीरूपी चिरस्थाई पौधा) के नाम से प्रसिद्ध यह पौधा बहुमूल्य गुणों से युक्त होने पर भी अनदेखा किया जाता रहा है। यह आलेख इसी प्रयास में लिखा गया है कि *एनाफेलिस बुसुआ* के अस्तित्व के महत्व को समझा जा सके।

भौगोलिक वितरण: भारतीय उपमहाद्वीप में यह पौधा उत्तर-पश्चिमी हिमालय के जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड; उत्तर-पूर्वी हिमालय के अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम; उत्तर पूर्व के मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा; पूर्व के पश्चिम बंगाल तथा दक्षिण के तमिलनाडु राज्य में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों जैसे भूटान, चीन, नेपाल एवं अफगानिस्तान में भी यह प्रजाति वितरित है।

प्राकृतिक आवास: यह पौधा अधिकतर समशीतोष्ण-पर्वतीय (टेम्पेरेट-मोंटन), ऊबड़-खाबड़ एवं चट्टानी भूमि जैसे ठंडे क्षेत्रों में लगभग 1800– 3500 मीटर की ऊंचाई पर प्राकृतिक रूप में उगता है।

रासायनिक तत्व: *ए. बुसुआ* में विभिन्न प्रकार के पादप रसायन (फाइटोकेमिकलस) पाए जाते हैं जो इसे ऑक्सीकरणरोधी (एंटीऑक्सीडेंट), जीवाणुरोधी (एंटीबेकटेरियल), कवकरोधी (एंटीफंगल) और सूजनरोधी (एंटी-इंफ्लेमेटरी) रूप से लाभदायक बनाते हैं। एक शोध के अनुसार संपूर्ण पौधे में कुल इकतीस रासायनिक तत्व पाए गए हैं। जिसमें से हेक्साडेकानोइकएसिड , मोमेइनोसिटोल, ओलेइक एसिड, कम्पेस्टेरोल, लानोस्टेरोल, 16-कीटो-26 हाइड्रोक्सी कोलेस्टेरॉल, हेनेइकोसेन, कोलेस्ट-5-एन-3-ऑल, टेट्राकॉन्टेन उपर्युक्त गुणों को दर्शाते हैं।

औषधीय गुण और उसके स्थानीय प्रयोग: औषधीय गुणों से भरपूर यह जंगली पौधा, सालों पहले से नेपाल एवं उत्तराखंड की जनजातियों में अपने गुणों को लेकर प्रचलित रहा है। नेपाली में यह 'भूको, बु-स्वा और भूकी फूल' के नाम से जाना जाता है। वहीं पर उत्तराखंड में स्थानीय लोग *ए. बुसुआ* को 'बुगल्या' नाम से पहचानते हैं। इसकी ताजा पत्तियों को मसल कर चीरे पर, कटे और छिले हुए घावों अथवा खरोचों पर पट्टी के साथ लगाया जाता है। इसके पुष्पों तथा फूलों से खांसी, जुकाम और गले की खराश का इलाज भी किया जाता है। *ए. बुसुआ* की जड़ों का रस भी चिकित्सा में उपयोगी है। भोजन से पूर्व इसे लेने पर यह पत्तियां भूख बढ़ाती हैं। इसके अलावा, इसे ठीक होने वाले मरीजों को टॉनिक के रूप में भी दिया जाता है। यह दमा रोधी गुणों को भी प्रदर्शित करता है। इसके अलावा *एनाफलिस* की अन्य विभिन्न प्रजातियों में भी अनेक औषधीय गुण पाए गये हैं।

भारत में इसके विशाल वितरण के बाद भी, इस पौधे का महत्व तथा इसका उपयोग बहुत ही सीमित है। हिमालय के करीब बसे इलाकों में रहने वाली जनजातियों और उनकी परंपराओं में ही केवल *ए. बुसुआ* का नाम आता है।

यह पौधा आसानी से पहाड़ी इलाकों में उग जाने के कारण खर-पतवार जैसा समझा जाता है। जबकि ये समझने वाली बात है की यह पौधा हिमालय क्षेत्र की पारिस्थितिकी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबलवार्मिंग के कारण हिमलाय जैसे

संवेदनशील क्षेत्र में आए दिन भूस्खलन जैसी समस्या और तेजी से होता शहरीकरण एक बहुत ही बड़ी समस्या है। वो दिन दूर नहीं जब ये पौधा भी लुप्त होने की कगार पर आ जाएगा। इसलिए आवश्यकता है कि अब इस पौधे को एक अलग दृष्टिकोण से देखा जाये और इसके महत्व को रेखांकित करते हुए इसके संरक्षण के उपाय पर विचार किया जाए।

एनाफेलिस बुसुआ, (दोमबांग वैलि, लाचुंग) उत्तरी सिक्किम के सितंबर, 2023 सर्वेक्षण के दौरान प्रिया सिंह कुशवाहा के द्वारा यह पौधा संग्रहित किया गाया

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 47-49 (2024)

कॉमिफोरा वाइटियाइ (गुग्गुल): एक बहुउपयोगी संकटग्रस्त औषधीय प्रजाति

प्रियंका, गिरिराज सिंह पँवार एवं संदीप कुमार चौहान

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण-भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान, नोएडा

वनस्पतियों का मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है और इसके अतिरिक्त ये कई जीवन रक्षक औषधियों का स्रोत हैं। भारत का विशाल प्राकृतिक खजाना वनस्पतियों में संग्रहीत है और पोषक और उपचारात्मक गुणों के कारण मानव जाति के लिए लाभकारी है। *कॉमिफोरा वाइटियाइ*, *कॉमिफोरा* वंश की एक संकटग्रस्त औषधीय प्रजाति है और औषधीय गुणों के कारण प्रकृति से इसका अप्राकृतिक तरीके से दोहन किया जा रहा है।

चित्र 1: *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का पेड़

वंश *कॉमिफोरा* ग्रीक शब्द 'कोम्मी' से बना है जिसका अर्थ है गोंद या राल और 'फोरोस' का अर्थ है धारण करना और प्रजाति 'वाइटियाइ' का नाम 19वीं सदी के स्कॉटिश सर्जन तथा वनस्पतिशास्त्री रॉबर्ट वाइट के सम्मान में रखा गया है, जिन्होंने भारत में बड़े पैमाने पर काम किया।

भारत में वंश *कॉमिफोरा* की 5-प्रजातियाँ पायी जाती हैं जैसे *का. मीररह*, *का. स्टॉकसियाना*, *का. वाइटियाइ*, *का. बेरी* तथा *का. एगलोचा*, लेकिन इनमें *कॉमिफोरा मीररह* अपने उपयोग मूल्यों के लिए अच्छी तरह से प्रलेखित है। भारत में *कॉमिफोरा* की विभिन्न प्रजातियाँ अलग-अलग राज्यों से उल्लेखित की गई हैं जैसे *कॉमिफोरा अगालोचा* बारागढ़ (उड़ीसा),*कॉमिफोरा बेरी* तिरुचिरापल्ली, कोयंबटूर (तमिलनाडु) और आनंद (गुजरात), *कॉमिफोरा मीररह* जबलपुर (मध्य प्रदेश) तथा *कॉमिफोरा स्टॉकसियाना* आनंद (गुजरात)।

कॉमिफोरा वाइटयाइ, *कॉमिफोरा स्टॉक्सियाना*, *कॉमिफोरा बेरी* भारत में गुग्गल पैदा करने वाली मुख्य तीन प्रजातियाँ हैं। *कॉमिफोरा मेडागास्करिएन्सिस* (*कॉमिफोरा अगालोचा*) जो की भारत की मूल प्रजाति नहीं है, यहाँ के कुछ क्षेत्रों में इसे लगाया गया है किन्तु भारत के कुल गुग्गल उत्पादन में इसकी अहम भूमिका है।

कॉमिफोरा वाइटियाइ, भारतीय उपमहाद्वीप के शुष्क इलाकों की एक झाड़ीनुमा प्रजाति है और इसके मुख्य तने और शाखाओं पर चीरा लगाने से ओलियो-गम-राल (इंडियन बेडेलियमया गुग्गुल) प्राप्त होता है। इस प्रजाति को अलग-अलग भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे अंग्रेजी (भारतीय बेडेलियम) हिंदी (दुर्ग, गुक्कल, गुक्कुलु), तमिल (मैशाक्षी, गुग्गला, गुलाग), मराठी (मुकुल, मुकुल लोहबान वृक्ष,गुग्गल, गुगली, गुगर, गुग्गुल), गुजराती (मुकुल, तेलगु में गुगुल, महिसाक्ष, मैसाक्षी),अरबी (अफलातन, मोकल, मोकलेरजकी, मुकुलेराबी), संस्कृत (भावभिष्ठ, भूतहारा) कहते हैं।

कॉमिफोरा वाइटियाइ के पौधे की वृद्धि बहुत ही धीमी गति से होती है और 3-4 मीटर की ऊंचाई प्राप्त करने में इसे 8 से 10 साल लग जाते हैं। पौधे की प्रारंभिक वृद्धि में शाखाओं को काटने से घनी शाखायें विकसित होती हैं, जिससे गोंद की बेहतर उपज होती है। पौधे को अपने प्राकृतिक वातावरण की शुष्क जलवायु में परिपक्वता तक पहुंचने में आम तौर पर दस साल लगते हैं। सूखा गुग्गुल की पैदावार प्रत्येक मौसम में प्रति पेड़ 250-700 ग्राम तक होती है। गुग्गुल में मुख्य रूप से राल, वाष्पशील तेल तथा गोंद होता है और इसमें कई औषधीय रूप से सक्रिय यौगिकों की पहचान की गई है जैसे ई और जेड-गुगुलस्टेरोन।

स्थानीय लोगों के अनुसार इसके प्राकृतिक आवासीय क्षेत्रों (गुजरात और राजस्थान) से अत्यधिक दोहन होने के फलस्वरूप यह प्रजाति दुर्लभ हो गयी है। प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थितियों में कम बीज उत्पादन तथा बदलते वर्षा पैटर्न, पर्यावरणीय परिवर्तन और बढ़ते

वायुमंडलीय प्रदूषण के कारण इसके अस्तित्व पर और भी संकट गहरा गया है। इन सब मानवजनित कारणों से यह प्रजाति लंबे समय से अपने प्राकृतिक आवास में अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है और इसकी आबादी खतरे में आ गयी है। इस प्रजाति को हाल ही में संकटग्रस्त प्रजातियों की आइ. यू. सी. एन. रेडलिस्ट में सामिल किया गया है और मानदंड A2cd के तहत अति संकटग्रस्त श्रेणी में सूचिबद्ध किया गया है।

अवलोकनों से पता चला है कि 10 वर्षों की अवधि के भीतर इसकी संख्या 50% से भी कम हो गई है और प्रकृति में कुछ ही स्थानों पर इसकी बिखरी हुई आबादी शेष बची हैं। 1980 के दशक में किए गए अध्ययन में पाली जिले के फालना अरावली रेंज और बाड़मेर जिले के मेवानगर पहाड़ियों में प्रति हेक्टेयर 10 पौधे पाये गये थे। यह प्रजाति उत्तरी अफ्रीका से लेकर मध्य एशिया (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश) तक पाई जाती है। भारतीय-उपमहाद्वीप में *कॉमिफोरा* भारत, पाकिस्तान और बलूचिस्तान से उल्लेखित है। भारत में यह राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के कलात डिवीजन के शुष्क चट्टानी इलाकों में पायी जाती है। भारत में यह प्रजाति उष्णकटिबंध,शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में 300-1600 मीटर की ऊंचाई तक पायी जाती है जहां औसत वार्षिक वर्षा 225-500 मि.मी के बीच तथा तापमान 20-35 डिग्री सेल्सियस तक होता है। यह प्रजाति प्रकृति में रेतीली तथा पथरीली मिट्टी में पाई जाती है।

कॉमिफोरा की अन्य प्रजातियों की तुलना में *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का भारत में व्यापक वितरण है। गुजरात में यह मुख्य रूप से कच्छ और सौराष्ट्र के कुछ हिस्सों में, राजस्थान के सवाई-माधोपुर, बूंदी, कोटा, जालौर, सिरोही, पाली, नागौर, सीकर, चुरू, बीकानेर, अजमेर, अलवर, जयपुर, जैसलमेर, उदयपुर, जोधपुर, झुंझुनूं तथा मध्य प्रदेश के मुरैना, भिंड, शिवपुरी, श्योपुर, दमोह जिलों में पायी जाती है।

***कॉमिफोरा वाइटियाइ* पर संभावित खतरे:** इस प्रजाति का प्रकृति से अप्राकृतिक ढंग से विदोहन के कारण इस पर भारी संकट मंडरा रहा है। इस प्रजाति पर संभावित खतरों में मुख्य है इसके राल को निकालने की विनाशकारी टैपिंग विधि जिसके कारण प्रकृति में इसकी संख्या में भारी गिरावट आ रही है। इसके साथ-साथ प्रजाति पर दीमक का संक्रमण, मृदा अपर्दन, चरवाहों द्वारा इसको छति पहुचाना और स्थानिक लोगों द्वारा इसकी लकड़ी का ईंधन के लिए इस्तेमाल करना आदि भी प्रकृति से इसकी घटती संख्या के लिए उत्तरदायी है।

प्रवर्धन : *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का प्रसार बीज के माध्यम से अधिक कारगर है, क्योंकि इनकी जड़े कटिंग के माध्यम से स्थापित पौधों की तुलना में ज्यादा गहरी होती हैं। किन्तु सीमित बीजांकुरण दर और अंकुरों की उच्च मृत्यु दर इस प्रजाति के प्रसार एवं विस्तार को सीमित करती है। प्राकृतिक परिस्थितियों में प्रति पौधे बीजों का बहुत कम मात्रा में बनना, खराब बीज अंकुरण दर (5%) और प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियाँ इस प्रजाति के बीजों द्वारा पुनर्स्थापन की पूर्ण विफलता के लिए जिम्मेदार हैं। जंगलों में इस प्रजाति के व्यस्क पौधों के नीचे बीजों के माध्यम से प्राकृतिक पुनर्जनन कदाचित ही देखने को मिला हो।

कॉमिफोरा वाइटियाइ को स्टेम कटिंग (25 सेमी लंबी और 1 सेमी मोटी) के माध्यम से भी सफलतापूर्वक प्रसारित किया गया है। पौधे की स्वस्थ और रोग मुक्त शाखाओं, जब पौधा लगभग पत्ती रहित होता है, की कटिंग आमतौर पर गर्मियों में लगायी जाती हैं। मानसून की शुरुआत के साथ पौधा शारीरिक रूप से सक्रिय हो जाता है और कटिंग में भी 25-50 दिनों में कलियों के अंकुरित होने के लक्षण दिखने लगते हैं। कटिंग से प्रसारण को बढ़ाने और इसमें जड़ों को प्रेरित करने के लिए इण्डोल-3-ब्यूटिरिक एसिड (IBA) सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला ऑक्सिन है। स्थापना के बाद नर्सरी बेड में पौधों को पॉलीबैग में स्थानांतरित कर दिया जाता है और जून के दूसरे-तीसरे सप्ताह या जुलाई की शुरुआत में बरसात के मौसम में खेतों या जंगलों में स्थानांतरित कर दिया जाता है।

प्रत्येक पौधा लगभग 0.5 से 1 किलोग्राम ओलियो-गमराल का उत्पादन करता है जिसे जनवरी से मार्च तक एकत्र किया जाता है। पौधे की छाल से प्राप्त गोंद हल्के पीले से भूरे रंग तथा सुगंधित प्रकृति का होता है। गोंद-रालगाढ़ा तथा ज्वलनसील होता है और गर्मी से पिघलने लगता है। पानी में घुलने पर यह दूधिया सफेद हो जाता है।

चित्र 2: *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का मुख्य तना

उपयोग: गुग्गुल का उपयोग रोगों के उपचार में प्राचीन काल से ही भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली तथा आयुर्वेद में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चरक संहिता (1000 ईसा

चित्र 3: *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का फूल

पूर्व), सुश्रुत संहिता (600 ईसापूर्व) और वाग्भट्ट (7वीं शताब्दी ईस्वी) जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथों में गुग्गुल के सक्रिय उपयोग और किस्मों के बारे में विस्तृत विवरण है। *कॉमिफोरा वाइटियाइ* में कई औषधीय गुण हैं और यह कई रोचक जैविक गतिविधियों को प्रदर्शित करता है जैसे सूजन कम करना, जीवाणुरोधी, एंटी-माइक्रोबियल, एंटी-ऑक्सीडेंट, गठिया रोधी,कैंसर रोधी, अल्सर रोधी, कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करना, लीवर की रक्षा करना, मांसपेशियों को आराम पहुचाना, एंटी-मैलेरियल, एंटी-माइकोबैक्टीरियल, लार्विसाइडल आदि। गुग्गुल का उपयोग इसकी सुगंध के कारण इत्र में तथा कसैलेपन के कारण टूथपेस्ट में किया जाता है।

गुग्गुल एक प्राकृतिक स्वास्थ्य उत्पाद है और इसका उपयोग मुख्य रूप से बढ़े हुए रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने के लिए किया जाता है। भारत में इसका उपयोग हाइपोकोलेस्ट्रोमिक एजेंट के रूप में कई वर्षों से किया जा रहा है। यह वजन घटाने और वसा जलाने वाले एजेंट के रूप में प्रभावी है। यह शरीर में श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ाता है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है।

कॉमिफोरा वाइटियाइ के राल को एक वाहक के रूप में उपयोग किया जाता है और विशिष्ट स्थिति के इलाज के लिए अन्य जड़ी-बूटियों के साथ मिलाया जाता है। गुग्गुलिपिड नामक अर्क, *कॉमिफोरा वाइटियाइ* के पेड़ से प्राप्त होता है और इसका उपयोग भारत में लगभग 3000 वर्षों से पारंपरिक चिकित्सा तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जाता रहा है। इसकी छाल के रस से प्राप्त घटक अपनी जीवाणुरोधी क्रिया के कारण कई औषधीय गतिविधियों जैसे सूजन-रोधी (एडिमा को कम करना), दर्द निवारक, घाव की सफाई और उपचार में कारगर है।

कॉमिफोरा वाइटियाइ की विभिन्न औषधियां कटिस्नायुशूल, अर्धांगघात, गठिया, आमवाती रोग, चेहरे का पक्षाघात आदि में उपयोग की जाती हैं। अरुचि, पेट फूलना, कृमि संक्रमण, बवासीर आदि पाचन संबंधी रोगों में भी यह कारगर है। इसका उपयोग भगवान की पूजा (देव धूप) में धूप के रूप में भी किया जाता है। *कॉमिफोरा वाइटियाइ* को उलुखला के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसमें गोंद-राल गुहाओं से निकलता है। राल सर्वोत्तम औषधि है इसलिए इसे पुरा के नाम से जाना जाता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली में इसे एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप में मान्यता प्राप्त हैI

मुलायम शाखाओं का उपयोग दांतों को साफ करने के लिए टूथब्रश के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके पौधों का कृषि वानिकी में बैरियर हेज के रूप में भी उपयोग होता है। आदिवासी जनजाति और स्थानीय निवासियों का मानना है कि गोंद-रेज़िन के धुएं से बुरी आत्माएं दूर रहती हैं और उनके भगवान प्रसन्न होते हैं। गरासिया, सहरिया और कालबेलिया जनजातियों द्वारा इसका व्यापक स्तर पर एथनोबोटनिकल उपयोग किया जा रहा है।

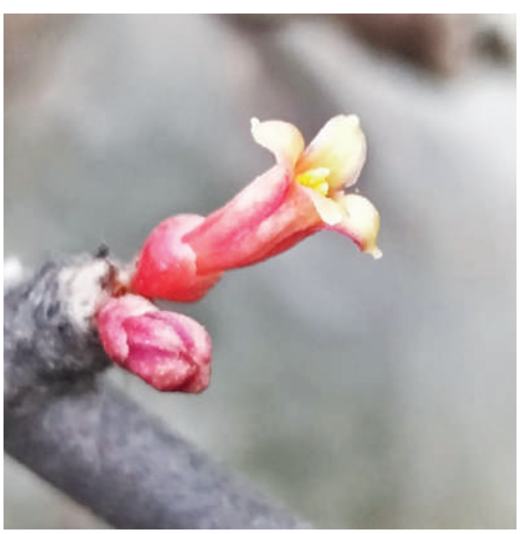

चित्र 4: *कॉमिफोरा वाइटियाइ* का फूल

गुग्गल भारतीय रेगिस्तान का एक बहुउपयोगी संकटग्रस्त पौधा है तथा असतत दोहन के कारण इसकी आबादी लगातार छीण हो रही है। इस प्रजाति के कारगर संरक्षण, प्रकृति में पुनर्स्थापन, आवास बहाली, गम टैपिंग के लिए विकसित विधि का उपयोग तथा स्थानीय जागरूकता जैसे प्रयासों पर अधिक जोर और बढ़ावा देने की आवश्यकता है। अपने उच्च औषधीय महत्व के कारण इस पौधे को कृषि वानिकी प्रणाली में शामिल किया जा सकता है।आवास संरक्षण, सतत उपयोग और खेती द्वारा इसका संरक्षण समय की मांग है और इसकी घटती आबादी पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 50-50 (2024)

समुद्री शैवाल (डल्स) - आयरलैंड के लिए वरदान

कैलाश प्रसाद कुशवाहा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

समुद्र पृथ्वी के लगभग 71 प्रतिशत हिस्से में व्याप्त है | इस धरती का 90 प्रतिशत से भी अधिक पानी समुद्रों में ही है और यह रहस्यों से भरा पड़ा है | विशेषज्ञों के अनुसार समुद्र खोज का एक विशाल क्षेत्र है | मानव अभी तक इसके 5 प्रतिशत हिस्से में ही खोज कर पाया है | इन अन्वेषित क्षेत्रों में लगभग 2,50,000 जीवों की प्रजातियां पायी जाती है और बीस लाख से भी अधिक जीवों के प्रजातियों का अन्वेषण करना अभी भी बाकी है | समुद्र प्रारंभ से ही मानव के भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है | मछलियों से लेकर खर-पतवार तक मानव के खाने के काम आते हैं | ऐसा ही खरपतवार है डल्स जो पश्चिमी देशों में बहुत ही लोकप्रिय है |

डल्स एक विशेष प्रकार का समुद्री-शैवाल है जो लाल-बैंगनी रंग का होता है | यह प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है | यह ठंडे पानी में उगता है | इसकी खेती भी की जाति है | इसकी खेती के तरीके को डुलसिंग कहा जाता है | यह कनाडा और उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र में कई जगह पाया जाता है | डल्स आयरलैंड के समुद्र-तटीय इलाकों में रहने वालों के लिए एक हजार वर्षों से भी अधिक समय से आधारभूत भोजन रहा है | आजकल यह सी- फूड कई देशों में सुपर सी-फूड बन गया है |

19 वीं सदी में जब आयरलैंड में सूखा पड़ा था उस समय यही शैवाल हजारों लोगों का जान बचाया था | लेकिन हालात बेहतर होने पर लोगों ने इसे किसानों का खान मानकर छोड़ दिया | सातवीं और आठवीं सदी के आयरलैंड के स्थानीय कानून की पुस्तक क्रिथ गबलाच में यह उल्लिखित है कि मेहमानों का स्वागत भी डल्स से किया जाता था | इसे उबालकर और सूखाकार दोनों तरह से खाया जाता था | डल्स की खासियत यह है कि ताजा डल्स स्वाद में मीठा लेकिन बासी पड़ने पर इसका जायका नमकीन लगता है | तल कर खाने से इसका स्वाद पोर्क की तरह होता है | इसके पौष्टिक गुणों के बारे में जानकार लोगों ने एक बार फिर इसका सेवन करना शुरू कर दिया है | अब डल्स के साथ बहुत से नए- नए डिश बनाए जाने लगे | डल्स के औषधीय गुण हैं | डल्स को अन्य शैवालों के साथ चाय में पकाकर पीने से या इसे पानी में डालकर नहाने से त्वचा से संबंधित बीमारियों में लाभ होता है |

पिछले कुछ वर्षों में आयरलैंड के शेफ ने इसे आयरलैंड में सुपर फूड के रुप में पेश किया है | बहुत से बड़े रेस्टुरेंट में इसे विशेष पकवान के रूप में बेचा जाने लगा है | आज कल आयरलैंड की राजधानी बेलफास्ट की प्रसिद्ध सेंट जॉर्ज मार्केट में इसके बने बैग और अन्य सामान भी बड़े पैमाने पर बेचे जा रहें हैं | पाँच साल पहले एलिसन और अबरीनीथ नाम के दंपति ने पारंपरिक तरीके से डल्स मिलाकर मक्खन बनाना शुरू किया था | आज इनका मक्खन बड़े बड़े रेस्टुरेंट में जाता है | यह मक्खन अब पूरे आयरलैंड में मशहूर हो गया है | आश्चर्य की बात यह है कि डल्स से बने मक्खन की बदौलत ही ब्रिटेन के प्रिंस चार्ल्स, उनकी पत्नी कैमिला और ग्लॉस्टर की रानी से मिलने का मौका मिला | लोगों को अब यह यकीन हो गया है कि डल्स के रहते आयरलैंड कभी भी भूखा नहीं मर सकता है |

स्रोत : बीबीसी ट्रेवल

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 51-52 (2024)

प्रो. हरिहर पटनायक - शैवालविद एवं शिक्षाविद

सुकुमार भक्ता[1], आर. के. गुप्ता[2], शिब प्रसाद अधिकारी[3] एवं सुदिप्त कुमार दास[1]

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अंडमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा
[3]फ़क़ीर मोहन विश्वविद्यालय, ओड़िशा

प्रो. हरिहर पटनायक का जन्म 20 अगस्त 1924 को अविभाजित कटक जिला के जाजपुर उपखंड के अंतर्गत बलरामपुर, तालगड़ा गांव में डॉ. कालीचरण पटनायक और श्रीमती दीनमणि देवी के चौथे बच्चे के रूप में हुआ था। पटनायक की प्रारंभिक शिक्षा बाणपुर के एम.ई. स्कूल में हुई थी, जहाँ उनके पिता एक डॉक्टर के रूप में सेवारत थे। वर्ष 1941 में वह रेवेनशॉ कॉलेजिएट स्कूल, कटक से मैट्रिक पास किए। उन्होंने वर्ष 1943 में रेवेनशॉ कॉलेज में वनस्पति विज्ञान (ऑनर्स) में अपनी बी.एससी. डिग्री की। अपनी बी.एससी. की डिग्री के बाद, वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान में पी.जी. छात्र के रूप में शामिल हो गए और जुलाई 1949 में एम.एससी. पास किए। प्रसिद्ध अल्गोलॉजिस्ट, प्रोफेसर ए. के. मित्रा, पुरावनस्पतिशास्त्री प्रो. डी. डी. पंत और कवक वैज्ञानिक प्रोफेसर आर. के. सक्सेना इलाहाबाद में उनके शिक्षक थे।

पी.जी. डिग्री के तुरंत बाद, प्रो. पटनायक विज्ञान संकाय में प्रदर्शक के रूप में रेवेनशॉ कॉलेज में कार्य आरम्भ किए और1962 तक उसी पद पर काम करना जारी रखा। उसी दौरान सिर्फ़ एक वर्ष (1950-1951) के लिए एफ.एम. कॉलेज, बालासोर के संकाय के रूप में भी कार्य निर्वाह किए। रेवेनशॉ कॉलेज में अपने कार्य के दौरान, स्थानीय फूल तथा पौधों के वर्गीकरण में उनकी रुचि थी। इसी संदर्भ में उन्होंने "कटक के हाइड्रोफाइट्स" और "कटक के खरपतवार" प्रकाशित किए। उनकी वर्गीकरण पृष्ठ भूमि के कारण, आजतक उन्हें एक उत्कृष्ट पादप वर्गीकरण विशेषज्ञ के रूप में पहचाना जाता है।

1958 से, पटनायक ने अपने पी.एचडी. कार्य के लिए लंदन विश्वविद्यालय के एफ.आर.एस. प्रोफेसर जी.ई. फॉग के साथ संपर्क किया। उस समय विदेश में अध्यावृति आवेदन करने की प्रक्रिया यह थी कि समाज के प्रति इसकी प्रासंगिकता के आधार पर एक परियोजना प्रस्ताव सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता था। उनकी परियोजना "जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण और फसल उत्पादकता में इसकी भूमिका" पर अंतर्राष्ट्रीय जैविक कार्यक्रम के एक अग्रिम पंक्ति अनुसंधान क्षेत्र की तत्कालीन डी.पी.आई., प्रो. बाम चरण दास द्वारा अनुमोदित किया गया था। इस परियोजना को ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार कर लिया, और उन्हें लंदन में काम करने के लिए कोलंबो प्लान फेलोशिप के लिए चुना गया। प्रो. जी.ई. फॉग के मार्गदर्शन में उन्होंने 1962 में अपनी शोध कार्य शुरू किया। कटक के धान खेत से लिए गये मिट्टी से उन्होंने वेस्टियोलोप्सिस प्रोलिफिका नामक एक विषम शाखाओं वाले नील-हरित शैवाल को निजात किया, और प्रयोगशाला में अध्ययन के माध्यम से इस तरह के एक शाखित प्रोकैरियोट को पहली बार नाइट्रोजन स्थिरीकरण होने की सूचना दी। यह शोध कार्य 'एनल्स ऑफ बॉटनी' जैसे प्रसिद्ध पत्रिका में प्रकाशित हुआ तथा, जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर कार्य कर रहे विश्व के अन्य शोधकर्ताओं द्वारा प्रसंशित हुआ। उस समय दुनिया की केवल कुछ मुट्ठी भर प्रयोगशालाओं में उपलब्ध एक दुर्लभ परिष्कृत उपकरण, मास-स्पेक्ट्रोमीटर तथा15N तकनीक का उपयोग कर के इस शैवाल के नाइट्रोजन स्थिरीकरण तंत्र की विशेषता बताई। प्रो. डब्ल्यू. डी. पी. स्टीवर्ट, प्रो. पीटर फे, प्रो. ए. ई. वाल्स्बी, प्रो. रोजली एम कॉक्स-नीब्राउन, प्रो. एच. डी. कुमार, प्रो. ई. पाशे और प्रो. एन. सेन जैसे तत्कालीन प्रक्ष्यात शैवालविद्, लंदन विश्वविद्यालय के वेस्टफील्ड कॉलेज में उनके सहयोगी थे।

इसके दो साल बाद, अक्टूबर 1964 में वह भारत लौटे और रेवेनशॉ कॉलेज में वनस्पति विज्ञान में व्याख्याता के रूप में पुनः स्थापित हुए। इस के तुरंत बाद उन्होंने प्रोफेसर पी. परिजा के साथ रेवेनशॉ कॉलेज में शैवाल और विशेष रूप से नील-हरित शैवाल (साइनोबैक्टीरिया) पर काम करना शुरू किए। उन्हें 1968 में ओड़िशा सरकार के तरफ से रीडर के रूप में पदोन्नति किया गया था। इसके तुरंत बाद 1969 में उन्हें ब्रह्मपुर विश्व विद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग शुरू करने के लिए विशेष अधिकारी के रूप में चुना गया। वर्ष 1970 में, इसी विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के पहले (संस्थापक) प्रोफेसर के रूप में उन्हें पदोन्नत किया गया। वहाँ उन्होंने वेस्टियोलोप्सिस प्रोलिफिका जैसे नील-हरित शैवाल को जैविक खाद के रूप में उपयोग करने के उद्देश्य से विभिन्न पहलुओं पर काम प्रारंभ किए।

उनके द्वारा किए गए खोज जेड. फ्लेज़ेंन फिजियोलॉजीए, हाइड्रोबायोलॉजिया, करेंट साइंस आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित किए गए।1972 में, उन्होंने एक महीने के लिए भारत-चेक विनिमय कार्यक्रम में प्राग (चेकोस्लोवाकिया) का दौरा किया और प्रोफेसर बी. फोट की प्रयोगशाला में काम किया, जिन्हें फ्लैजेल्ला के आधार पर शैवालों के वर्गी करण के लिए जाना जाता है।

प्रो. पटनायक ने साइनोबैक्टीरिया के विभिन्न क्षेत्रों पर काम किया है, जैसे हेटरोट्रॉफ़िक विकास और नाइट्रोजन स्थिरीकरण, औद्योगिक अपशिष्टों के प्रति सहिष्णुता, कृषि रासायनिक तनाव की प्रतिक्रिया, एंटीबायोटिक प्रतिरोध, समुद्री शैवाल की खेती और चिल्का झील के ग्रेसिलारिया से अगर उपज ईत्यादि। उन्होंने सी.एस.आई.आर. और यू.जी.सी. द्वारा प्रायोजित परियोजनाओं का संचालन किया है यथा (1) चिल्का झील के ग्रेसिलारिया वेरुकोसा के ईन-विवो कल्चर और (2) अस्का सहकारी चीनी मिलों के प्रदूषण अपशिष्टों के लिए एक पारिस्थितिक दृष्टिकोण।

प्रो. पटनायक को लगभग एक दशक (1972-1982) तक स्नातकोत्तर परिषद के प्रमुख के रूप में ब्रह्मपुर विश्वविद्यालय की सेवा करने का अनूठा गौरव प्राप्त है। उन्होंने 1979 के दौरान छह महीने के लिए और फरवरी 1982 से अप्रैल 1984 तक कुलपति के रूप में विश्वविद्यालय के सर्वोच्च पद पर उपस्थित रहें थे। इसके बाद वह अप्रैल 1984 से अगस्त 1986 तक रेल सेवा आयोग के अध्यक्ष रहे। सक्रिय सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद भी वह क्षेत्रीय भाषा में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए अपना काम जारी रखे हुए थे। जब वह रेवेनशॉ कॉलेज में एक युवावख्याता थे, ओड़िया में विज्ञान लेख लिखने के लिए उनका गहरा प्यार और विशेषज्ञता पिछले 50 वर्षों से अच्छी तरह से देखी जाती है। वे विज्ञान प्रचार समिति के संस्थापक सदस्य, तथा समाज, संबाद, प्रजातंत्र, विज्ञानालोक, विज्ञान प्रभा, विज्ञान दिगंत और योजना जैसे पत्रिकाओं के नियमित लेखक थे। उन्होंने ओड़ीशा सरकार के पाठ्यपुस्तक ब्यूरो द्वारा ओड़िया में वनस्पति विज्ञान में प्रकाशित कई पाठ्यपुस्तकें तथा औषधीय पौधे (खंड I और II), और मसालों के औषधीय गुण जैसे कई लोकप्रिय पुस्तकें लिखी थीं। हाल ही में, उन्हें जीव विज्ञान के कई पहलुओं पर उनके लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए उत्कल साहित्य समाज द्वारा पारिजा पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 53-58 (2024)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, बारापानी (उमियाम), मेघालय के प्रायोगिक वनस्पति उद्यान में औषधीय पौधों का संरक्षण

[1]बी. बी. टी. थाम., [1]एल. आर. मियेती, [2]छाया देओरी, [1]विजय, [1]डेविड एल. बियते एवं [1]एन. ऑडियो

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग -793003
[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावडा- 71103

प्राचीन काल से, पौधों का मनुष्य के साथ अभिन्न संबंध रहा है, सरल उदाहरण में समझे तो यह है कि हम जिस ऑक्सीजन में सांस लेते हैं जो कि पौधों द्वारा प्रदान की जाती है और ठीक इसी के विपरीत हम साँस लेते समय कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं जिसका उपयोग पौधे प्रकाश संश्लेषण में करते है। इसलिए, इस पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए पौधों का महत्व अत्याधिक है और वे भोजन, पोषण, आश्रय आदि के रूप में मानव जीवन के लगभग हर पहलू अत्यंत आवयशक हैं। वे उस पर्यावरण को विनियमित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं जिसमें सभी जीव जन्तु रहते हैं तथा इन्ही के द्वारा हमारा ग्रह रहने योग्य बनया गया है। पौधे कई औषधीय यौगिकों का मूल्यवान स्रोत हैं जिनका उपयोग पारंपरिक और आधुनिक चिकित्सा प्रणाली दोनों में किया जाता है। हालाँकि, बड़े पैमाने पर वनों का शोषण, जलवायु परिवर्तन, उनके आवास के क्षरण के कारण, इन मूल्यवान पौधों की प्रजातियों की संख्या अत्याधिक दर से घट रही है, जो स्थानीय और वैश्विक चिंता का विषय बना हुआ है। इसलिए, इन मूल्यवान संसाधनों को संरक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। ऐसे पौधों की पहचान और संरक्षण के लिए ईबीजी, बारापानी में विभिन्न प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं। इस लेख में औषधीय रूप से महत्वपूर्ण उन पौधों की प्रजातियों की समृद्धि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिन्हें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण शिलाँग, प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, बारापानी में संरक्षित किया जा रहा है। प्रायोगिक वनस्पति उद्यान की स्थापना सन 1966 में उत्तर पूर्व भारत की महत्वपूर्ण पौधों की प्रजातियों के एक्स सीटू संरक्षण के उद्देश्य से की गई थी। बारापानी, शिलांग से लगभग 22 किमी दूर तथा उमियम झील के पास, लगभग 1000 मीटर की ऊंचाई पर तथा लगभग 25 एकड़ क्षेत्रफल में फैला हुआ और स्थित है। उद्यान में उत्तर-पूर्व भारत के संवहनी पौधों की लगभग 1300 प्रजातियाँ, 13 जिम्नोस्पर्म, 65 टेरिडोफाइट्स और 53 ब्रायोफाइट्स संरक्षित हैं। इस उद्यान में संरक्षण के अलावा, इन पौधों का पारंपरिक तकनीकों के माध्यम से प्रचार-प्रसार भी किया जाता है। यहाँ के संग्रह में औषधीय गुणों वाले पौधों की कई प्रजातियाँ भी शामिल हैं। विभिन्न प्रकार की प्रोपेगेशन प्रैक्टिसो का उपयोग करते हुए, इनमें से कई महत्वपूर्ण प्रजातियों को बगीचे में विस्थापित किया जा रहा है। इसके अलावा, जनता और आसपास के समुदायों को भी इन पौधों के महत्व और उनके संरक्षण की आवश्यकता के बारे में सहयोगी जागरूकता कार्यक्रमों और बगीचे के आगंतुकों के बीच ज्ञान का प्रसार करने के माध्यमो के बारे में जागरूक किया जा रहा है। शोधकर्ताओं, अनुसंधान संस्थानों और जनता को अंकुरित पोधों का वितरण उन प्रजातियों के अच्छे गुणन परिणामों के साथ-साथ उनके अधिक विस्तार के लिए भी किया जाता है। वर्तमान में, यह उद्यान लगभग 134 औषधीय पौधों की प्रजातियों का घर है। संरक्षित औषधीय पौधों की प्रजातियों का विवरण नीचे तालिका में दिया गया है।

तालिका 1. प्रायोगिक वनस्पति उद्यान, बीएसआई, ईआरसी, बारापानी (उमियाम) के औषधीय पौधों के संसाधनों की सूची:-

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	कुल	आवास	प्रयुक्त भाग	उपयोग
1	*एक्मेला कैल्वा* (डीसी.) आर.के.जानसेन	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	फूल	दांत दर्द, गले में संक्रमण, हकलाना, मुंह में दर्द और पेट दर्द
2	*एक्मेला पैनिकुलता* (वाल. एक्स. डीसी.) आर. के. जानसेन	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	फूल	दांत दर्द, गले में संक्रमण, हकलाना, मुंह में दर्द और पेट दर्द
3	*एकोरस कैलमस* एल.	एकोरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	बुखार, पेचिश, खांसी, अल्सर और त्वचा की समस्याएं
4	*एडेनेंथेरा पावोनिना* एल.	फैबेसी	पेड़	पत्ता, जड़, बीज, लकड़ी	गठिया, एंटीसेप्टिक, बुखार और खांसी
5	*एडियंटम कैपिलस* - वेनेरिस एल	टेरिडेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	जलन और जहरीला दंश
6	*एडियंटम फ़िलिपेंस* एल.	टेरिडेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	जलन और जहरीला दंश
7	*एगेरेटम कोनीज़ोइड्स* (एल.) एल.	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	कट और घाव
8	*अल्बिजिया चिनेंसिस* (ओस्बेक) मेरील	फैबेसी	पेड़	छाल, पत्ती	कृमिनाशक और त्वचा में संक्रमण

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	कुल	आवास	प्रयुक्त भाग	उपयोग
9	*एलियम हूकेरी* थ्वाइट्स	अमारेलडेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	बवासीर, चक्कर और शरीर का उच्च तापमान
10	*अलोकैसिया मैक्रोराइजोस* (एल.)जी.डॉन	अरैसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	घाव और जहरीले काटने
11	*एलो वेरा* (एल.) बर्म. एफ.	ज़ैंथोरियासी	जड़ी बूटी	पत्ती	घाव, जलन और गंजापन
12	*एल्पिनिया गलंगा* (एल.) विल्ड.	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	बुखार, खांसी, आंतों के कीड़े, बवासीर, पेट और गैस्ट्रिक समस्या
13	*ऐल्पीनिया नाइग्रा* (गार्टन.) बर्ट	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	बुखार और खांसी
14	*ऐल्पीनिया ज़ेरुम्बेट* (पर्स.) बी.एल. बर्ट और आर. एम. स्मिथ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	खांसी
15	*अल्टरनेथेरा सेसिलिस* (एल.) आर.बीआर. एक्स. डीसी.	ऐमारैंथेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	त्वचा टॉनिक
16	*ऐमारैंथस स्पिनोसस* एल.	ऐमारैंथेसी	जड़ी बूटी	पत्ती, टहनी	मधुमेह, रक्तचाप और जिगर की समस्याएं
17	*अमोमम एरोमैटिकम* रॉक्सबर्घ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	चेचक
18	*अमोमम सबुलटम* रॉक्सबर्घ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	फल	कार्डियो टॉनिक, कार्मिनेटिव और मूत्रवर्धक
19	*अनिसोमेल्स इंडिका* (एल.) कुन्ट्ज़	लैमियेसी	जड़ी बूटी	पत्ता	मांसपेशियों में दर्द
20	*एंटिडेस्मा एसिडम* रेट्ज़.	यूफोरबियेसी	झाड़ी	टहनी, पत्ती	पेट की समस्या और मधुमेह
21	*एक्विलरिया मैलाकेंसिस* लैम.	थाइमेलिएसी	पेड़	छाल	ट्यूमर, सांप के काटने, दस्त और उल्टी
22	*ऐरलिया आर्मटा* (वाल.) सीम	ऐरालियासी	झाड़ी	पत्ती	दमा
23	*आर्जीमोन मेक्सिकाना* एल.	पापावेरासिया	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	त्वचा रोग, फोड़े और घाव
24	*अर्गिरिया नर्वोसा* (बर्म.एफ.) बोजेर.	कांवोलूएसी	बेल	तना, पत्ता	गठिया और मांसपेशियों में दर्द
25	*अरिसेमा टोर्टुओसुम* (वाल.) स्काट.	औरसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	सर्प दंश
26	*आर्टोकार्पस हेटरोफिलस* लैम.	मोरेसी	पेड़	फल, जड़, बीज	त्वचा रोग, अस्थमा, बुखार, जड़, दस्त और पेचिश
27	*आर्टोकार्पस लकूचा* वॉल एक्स. रोक्सबर्घ.	मोरेसी	पेड़	छाल, फल	त्वचा रोग, अस्थमा, बुखार, जड़, दस्त और पेचिश
28	*अरुंडो डोनैक्स* एल.	पोएसी	जड़ी बूटी	टहनी	घाव और कृमि संक्रमण
29	*ऐसपेरेगस रेसमोसस* वाइल्ड.	लिलयेसी	बेल	प्रकंद	गठिया, खांसी, बवासीर, मूत्र विकार और कायाकल्प
30	*ऐवेरहोआ कैरम्बोला* एल.	ऐवेरोहीसी	पेड़	फल	दाद, चेचक, खाज, बवासीर और पीलिया
31	*एज़ाडेरिका इंडिका* ए. जूस	मैलीयेसी	पेड़	पत्ती, फूल, बीज	चर्म रोग, फोड़े, बुखार, मलेरिया, बवासीर और टॉनिक
32	*बौहिनिया पुरपुरिया* एल.	फैबेसी	पेड़	छाल	दमा, दस्त, पेचिश और त्वचा रोग
33	*बर्जिनिया सिलिआटा* (हाव.) स्टर्नब.	सैक्सीफ्रेगेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद, जड़	गुर्दे की विफलता, विरोधी भड़काऊ और पुरानी ब्रोंकाइटिस
34	*बाइडेंस पीलोसा* एल.	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	आंख और कान की समस्या
35	*बिक्सा ओरेलाना* एल.	बिक्सेसी	झाड़ी	पत्ती	जहरीले काटने और पीलिया
36	*बॉम्बेक्स सीबा* एल.	बॉम्बैकेसी	पेड़	छाल, जड़	शांतिदायक टॉनिक
37	ब्रूसिया मोलिस *वॉल. एक्स. कुर्ज़.*	सिमरौबैसी	झाड़ी	जड़	मलेरिया बुखार
38	*ब्रायोफिलम पिनाटम* (लैम.) ओकेन	करूसुलासी	जड़ी बूटी	पत्ती	सूजन, गठिया, संक्रमण, कट, घाव और सिरदर्द
39	*कैनेरियम स्ट्रिक्टम* रोक्सबर्घ	बुर्सेरासी	पेड़	राल	गठिया, बुखार, खांसी, दमा और त्वचा विकार
40	*कैरिका पैपाया* एल.	कैरिकेसी	झाड़ी	लेटेक्स	बवासीर
41	*कैसिया फिस्टुला* एल.	फैबेसी	पेड़	पत्ती, बीज, जड़	निमोनिया, गठिया और त्वचा रोग

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	कुल	आवास	प्रयुक्त भाग	उपयोग
42	*सेंटेला एशियाटिका* (एल.) अर्ब.	ऐपीयेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	उच्च रक्तचाप, घाव, घाव, बुखार, पेट की समस्याएं और तंत्रिका टॉनिक
43	*क्रोमोलेना ओडोरेटा* (एल.) आर.एम.किंग और एच.रोब	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	त्वचा में संक्रमण, घाव, दाद और जहरीले काटने
44	*सिनामोमम तमाला* (बुच.-हैम) टी.नीस और एबम	लौरेसी	पेड़	छाल, पत्ता	अपच, खांसी, सिरदर्द, चक्कर आना, दस्त, पेचिश और गठिया
45	*सिनामोमम वर्म* जे.प्रेस्ल	लौरेसी	पेड़	छाल	कसैले, वायुनाशक, खांसी और दर्द से राहत
46	*सिनामोमम बेजोलघोटा* (बुच.-हाम.) स्वीट	लौरेसी	पेड़	छाल	कसैले, वायुनाशक, खांसी और दर्द से राहत
47	*क्लेरोडेंड्रम ग्लैंडुलोसम* लिंडल.	लैमियेसी	झाड़ी	टहनी, फूल, पत्ती	उच्च रक्तचाप, बवासीर, आमवाती दर्द, बुखार और त्वचा रोग
48	*क्लेरोडेंड्रम इंडिकम* (एल.) कुन्ट्ज़	लैमियेसी	झाड़ी	पत्ती	विरोधी भड़काऊ, घाव, खांसी, सर्दी और अस्थमा
49	*कोमेलिना बेंगालेंसिस* एल.	कोमेलिनेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	खांसी, सर्दी, मांसपेशियों में दर्द, नेत्र विकार और जलन
50	*कोस्टस पिक्टस* डी.डॉन	कोस्टेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	टॉनिक, जीवाणुरोधी, विरोधी भड़काऊ, एंटीसेप्टिक और उत्तेजक
51	*चेइलोकोस्टस स्पेशोसस* (जे.कोनिग)सी.डी. स्पीच.	कोस्टेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	मूत्र संबंधी समस्याएं और गुर्दे की पथरी
52	*क्रॉसोसेफालम सरेपिडियोइड्स* (बेंथ) एस. मूरे	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	कट, घाव, जलन, पेट की बीमारी और अल्सर
53	*क्रिनम एशियाटिकम* एल.	ऐमारयलीडसी	जड़ी बूटी	बल्ब	सिरदर्द, सूजन और माइग्रेन
54	*क्रिनम लैटिफोलियम* एल.	ऐमारयलीडसी	जड़ी बूटी	पत्ती	सिरदर्द, सूजन और कान में संक्रमण
55	*करूसीलिगो ऑर्कियोइड्स* गारटन.	हाइपोक्सिडेसी	जड़ी बूटी	जड़	पीलिया, दमा, रक्त शोधन, अपच, थकान, उल्टी और दर्द
56	*करकुमा एन्गुसटीफोलिया* रोक्स्बर्घ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	पेट के विकार
57	*करकुमा कैसिया* रोक्सबर्घ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	खांसी, जुकाम, पेट का अल्सर और पेचिश
58	*करकुमा लोंगा* एल.	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	घाव, जलन, कट, मूत्र विकार, पेट की समस्याएं और त्वचा में संक्रमण
59	*सिंबोपोगोन सीट्रेटस* (डीसी.) स्टेपफ.	पोएसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	खांसी, दमा और सिरदर्द
60	*साइपरस रोटंडस* एल.	साइपेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	पेट के विकार, बुखार और त्वचा रोग
61	*डिलेनिया इंडिका* एल.	डिलेनियासी	पेड़	फल	दस्त, रूसी और बाल झड़ना
62	*डिलेनिया पेंटाफ़ायला* रॉक्सबर्घ	डिलेनियासी	पेड़	फल	घाव, मधुमेह और निमोनिया
63	*डचेसनिया इंडिका* (एंड्र्यूज) फॉक	रोजेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	फोड़े, जलन और मूत्र मार्ग में संक्रमण
64	*एक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा* एल.	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	त्वचा रोग, घाव और कीड़े के काटने
65	*एमिलिया सोनचिफोलिया* (एल.) डीसी.	ऐस्टेरेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	कट, घाव और अस्थमा/
66	*एंगेलहार्डिया स्पाईकाटा* लेचेन एक्स. ब्लूम	जगलैंडेसी	पेड़	छाल, पत्ती	बुखार और दर्द
67	*एरिंजियम फेटिडम* एल.	ऐपियेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	पीलिया, यकृत, मिर्गी और गठिया
68	*एरिथ्रिना स्ट्रिक्टा* रॉक्सबर्घ	फैबेसी	पेड़	छाल	गठिया और मिर्गी
69	*यूफोरबिया हिरटा* एल.	यूफोरबियेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	पेचिश, अस्थमा, त्वचा की समस्याएं और बवासीर/
70	*फाईकस हिस्पिडा* एल.एफ.	मोरेसी	पेड़	पत्ती, फल, छाल	कृमि संक्रमण, मूत्र संबंधी समस्याएं और पेचिश
71	*ग्लोरियोसा सुपरबा* एल.	कोलचिनेसी	जड़ी बूटी	जड़, बीज	मस्तिष्क टॉनिक, स्मृति हानि, अनिद्रा और गठिया

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	कुल	आवास	प्रयुक्त भाग	उपयोग
72	*ज्मेलिना अर्बोरिया* रोक्सबर्घ	लैमियेसी	पेड़	जड़, छाल, फूल	कृमिनाशक, ज्वर, मूत्र संबंधी समस्या, रक्त रोग और बवासीर
73	*गोनियोथैलेमस सेस्क्विपेडलिस* (वाल.) हुक. एफ. और थॉमसन	एनोनेसी	झाड़ी	पत्ती	पेट दर्द
74	*गाइनोकार्डिया ओडोरेटा* आर.बी.आर.	आचार्यसी	पेड़	बीज	कुष्ठ और गठिया
75	*हेडिचियम कोरोनेरियम* जे.कोनिग	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	सिरदर्द, खांसी, सर्दी और उल्टी
76	*हेमिडेस्मस इंडिकस (एल.) आर. बीआर. एक्स. शुल्ट.*	एपोसायनेसी	जड़ी बूटी	जड़, छाल	बुखार, दस्त, हड्डी रोग, गठिया, त्वचा रोग और बवासीर
77	*हिबिस्कस रोजा-सिनेंसिस* एल.	मालवेसी	झाड़ी	पत्ती	घाव, खांसी, बुखार, मधुमेह, त्वचा टॉनिक, बालों का झड़ना और गैस्ट्रिक अल्सर
78	*होलारेहना प्यूब्सेंस* वाल.एक्स. जी.डॉन	एपोसायनेसी	पेड़	छाल	दस्त, कृमिनाशक, त्वचा रोग, बवासीर, त्वचा रोग और गठिया
79	*होमालोमेना एरोमेटिका* (स्प्रिंग) स्काट	ऐरैसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	एंटीसेप्टिक, जोड़ों का दर्द और त्वचा में संक्रमण
80	*हौटुयनिआ कॉर्डेटा* थन्ब	सौरुरासी	जड़ी बूटी	पत्ती	पेचिश और मांसपेशियों में मोच
81	*काम्फेरिया गलंगा* एल.	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	अस्थमा, सूजन और गठिया
82	*काम्फेरिया रोटुंडा* एल.	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	घाव, सूजन और ट्यूमर
83	*लेजरस्ट्रोमिया स्पेशोसा* (एल.) पर्स.	लिथ्रेसी	पेड़	पत्ती, जड़	मधुमेह और पेट की समस्याएं
84	*लैंटाना कैमारा* एल.	वर्बेनेसी	झाड़ी	पत्ती	खांसी, बुखार और खुजली
85	*लीया इंडिका* (बरम.एफ.) मेरील	लीयेसी	झाड़ी	पत्ती, जड़	एलर्जी और त्वचा की समस्याएं
86	*लिटसीया क्यूबेबा* (लौर.) पर्स.	लौरेसी	पेड़	फूल, फल	गले में खराश, अपच और गठिया
87	*मैगनोलिया चंपाका* (एल.) बेल. एक्स. पियरे	मैगनोलिएसी	पेड़	फूल, फल, छाल	टॉनिक, कार्मिनेटिव, बुखार और मतली
88	*मनिहट एस्कुलेंटा* क्रांत्ज.	यूफोरबियेसी	झाड़ी	टहनी	दाद और कब्ज
89	*मेलास्टोमा मालाबैथ्रिकम* एल.	मेलास्टोमेसी	झाड़ी	पत्ती	दस्त, पेचिश, बवासीर और खून बहना बंद
90	*मेलिया अज़ेदारक* एल.	मेलिएसी	पेड़	पत्ती, छाल	तंत्रिका संबंधी समस्याएं, सिरदर्द, अस्थमा और गठिया
91	*मेसुआ फेरिया* एल.	क्लूसियासी	पेड़	फूल, जड़, बीज	घाव, गठिया, खांसी, पेचिश और जहरीला काटने
92	*मिमोसा पुडिका* एल.	फैबेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	पाइल्स और एलर्जी
93	*मैकुना प्रुरीएन्स* (एल.) डीसी.	फैबेसी	बेल	बीज, जड़	गैस्ट्रिक समस्या और अल्सर
94	*मुरैया कोएनिगी* (एल.) स्प्रेंग	रुटेसी	झाड़ी	पत्ती	दस्त, पेचिश, उल्टी, कृमिनाशक, बवासीर, सूजन, खुजली और मधुमेह
95	*नियोलमार्किया कदंबा* (रोक्सब.) बोसेर	रुबीयेसी	पेड़	छाल, पत्ती	टॉनिक
96	*नेपेंथेस खासियाना* हुक.एफ.	नेपेंथेसी	बेल	पिचर	चर्म रोग, नेत्र संक्रमण और पेट के रोग
97	*ओसीमम टेनुइफ्लोरम* एल.	लैमियेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	पाचन, रक्त शोधक, खांसी, सर्दी, पेट की समस्या, मधुमेह, मलेरिया और त्वचा में संक्रमण
98	*ओरोजायलम इंडिकम* (एल।) कुर्ज़	बिगनोनियेसी	पेड़	छाल	बवासीर
99	*ऑस्बेकिया नेपालेंसिस* हुक. एफ.	मेलास्टोमेसी	झाड़ी	पत्ती	यक्रत और पेट की समस्याएं
100	*ऑक्सालिस कॉर्निकुलाटा* एल.	ऑक्सालिडेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	पेट में दर्द
101	*पेडेरिया फोएटिडा* एल.	रुबियेसी	बेल	पत्ती	पेट के विकार, गठिया और गठिया
102	*पार्किया तिमोरियाना* (डीसी.) मेरील	फैबेसी	पेड़	पत्ती, फली, छाल	चर्म रोग, दस्त और बवासीर
103	*पेपरोमिया पेलुसीडा* (एल.) कुंथो	पाईपेरेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	पेट दर्द, गुर्दे संबंधी विकार और आमवाती जोड़ों का दर्द

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	कुल	आवास	प्रयुक्त भाग	उपयोग
104	*फ्लोगोगैथस थाईसीफ्लोरस* नीस.	अकैंथेसी	झाड़ी	फूल, पत्ती	खांसी, जुकाम और बुखार
105	*फ़ायलैन्थस एम्ब्लिका* एल.	फाइलेन्थैसी	पेड़	फल	पेट के विकार
106	*फाइलेन्थस यूरिनेरिया* एल.	फाइलेन्थैसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	ल्यूकोडर्मा, फोड़े और त्वचा रोग
107	*पाइपर नाइग्रम* एल.	पाईपेरासी	झाड़ी	जड़, बीज	अपच, पीलिया और गठिया
108	*प्लांटैगो ईरोसा* वॉल.	प्लांटागिनेसी	जड़ी बूटी	पत्ती	फोड़े
109	*सीडीयम गाजावा* एल.	मीरटेसी	पेड़	टहनी, पत्ती,फल	दस्त, पेचिश, मधुमेह और खांसी/
110	*पुयुनिका ग्रेनटम* एल.	पुयुनीकेसी	झाड़ी	फल	पाचन विकार और मूत्र संक्रमण
111	*राउवोल्फिया सर्पेन्टिना* (एल.) बेंथ. एक्स. कुर्ज़ी	एपोसायनेसी	झाड़ी	जड़	उच्च रक्तचाप, मिर्गी, अनिद्रा, दस्त, पेचिश और सांप के काटने
112	*राउवोल्फिया टेट्राफिला* एल.	एपोसायनेसी	झाड़ी	जड़	शामक और उच्च रक्तचाप
113	*रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम* स्मिथ	ऐरिकेसी	पेड़	फूल	पेचिश और रक्त शुद्धि
114	*रुस चिनेंसिस* मिल.	एनाकार्डियासी	झाड़ी	टहनी, फल	जीवाणुरोधी, एंटीवायरल और दस्त
115	*रिसीनस कम्युनिस* एल.	यूफोरबियेसी	झाड़ी	पत्ती, बीज	गठिया, बवासीर, दर्द और त्वचा रोग
116	*रोटाला रोटुंडिफोलिया* (बुच. हैम. एक्स. रोक्सबर्घ) कोहेन	लिथ्रेसी	जड़ी बूटी	सम्पूर्ण पौधा	मूत्र विकार
117	*रोथेका सेराटा* (एल.) स्टीन और माब.	वर्बेनेसी	झाड़ी	पत्ती	अपच
118	*सराका असोका* (रोक्सबर्घ) डी वाइल्ड	फैबेसी	पेड़	छाल, फूल	जीवाणुरोधी, विरोधी भड़काऊ, पेचिश और त्वचा रोग
119	*सोलेनम अमेरिकन* मिल.	सोलेनेसी	जड़ी बूटी	फल	सूजन, दस्त, पेट की शिकायत और बुखार
120	*सोलेनम एंगुवि* लैम.	सोलेनेसी	झाड़ी	फल	बुखार, खांसी और सर्दी
121	*सोलेनम टोरवम* स्व.	सोलेनेसी	झाड़ी	फल	बुखार, घाव और मधुमेह
122	*स्पोंडियास पिन्नाटा* (एल.एफ.) कुर्ज़ी	एनाकार्डियासी	पेड़	पत्ती, फल, छाल	दस्त, पेचिश और बवासीर
123	*सायजीजियम क्युमिनी* (एल.) स्कीलस	मीरटेसी	पेड़	छाल, फल	मधुमेह और एनीमिया
124	*टैमारिनडस इंडिका* एल.	फैबेसी	पेड़	बीज का गूदा	कब्ज, त्वचा संक्रमण, मधुमेह और पेट के विकार
125	*टैक्सस वालिचिआना* ज़ुस.	टैक्स्सेसी	पेड़	पत्ती, छाल	बुखार, मांसपेशियों में दर्द और कैंसर
126	*टर्मिनेलिया अर्जुना* (रोक्सबर्घ एक्स. डीसी.) वाइट एंड अर्न.	कॉम्ब्रेटेसी	पेड़	फल	अल्सर, ट्यूमर, एनीमिया और हृदय रोग
127	*टर्मिनेलिया चेबुला* रेट्ज़.	कॉम्ब्रेटेसी	पेड़	फल	बुखार, अपच, गैस्ट्रिक अल्सर और टॉनिक
128	*टिनोस्पोरा साइनेंसिस* (लोउर.) मेरील	मेनिस्पर्मेसी	बेल	सम्पूर्ण पौधा	पीलिया, दस्त, पेचिश, गठिया, मूत्र रोग और गठिया
129	*टूना सिलिऐटा* एम.रोएम.	मेलिएसी	पेड़	पत्ती	एंटी-बैक्टीरियल, एंटी-फंगल और त्वचा रोग
130	*विटेक्स नेगुंडो* एल.	लैमियेसी	झाड़ी	पत्ती	विरोधी भड़काऊ, कृमिनाशक और विरोधी कवक
131	*ज़ैंथोजायलम आर्मेटम* डीसी.	रुटेसी	झाड़ी	पत्ती, बीज	दमा, खांसी, बुखार, अपच, गठिया और दांत दर्द
132	*ज़ैंथोजायलम रेहेत्सा* डीसी.	रुटेसी	पेड़	पत्ती, बीज	खांसी, बुखार, अपच, गठिया और दांत दर्द
133	*जिंजीबर ऑफिसिनेल* रोस्क.	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	खांसी, जुकाम, ब्रोंकाइटिस और अपच
134	*जिंजीबर ज़ेरुंबेट* (एल.) रोस्क. एक्स. स्मिथ	जिंजीबेरेसी	जड़ी बूटी	प्रकंद	खांसी, दांत दर्द और त्वचा रोग

***निष्कर्ष* :** औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पौधों की प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाने के लिए उनका विस्तार एवं संरक्षण अंत्यंत आवश्यक है। इसके लिए हम उन्हें एक्स सीटू और इन सीटू संरक्षण विधियों द्वारा हम संरक्षित कर सकते है।

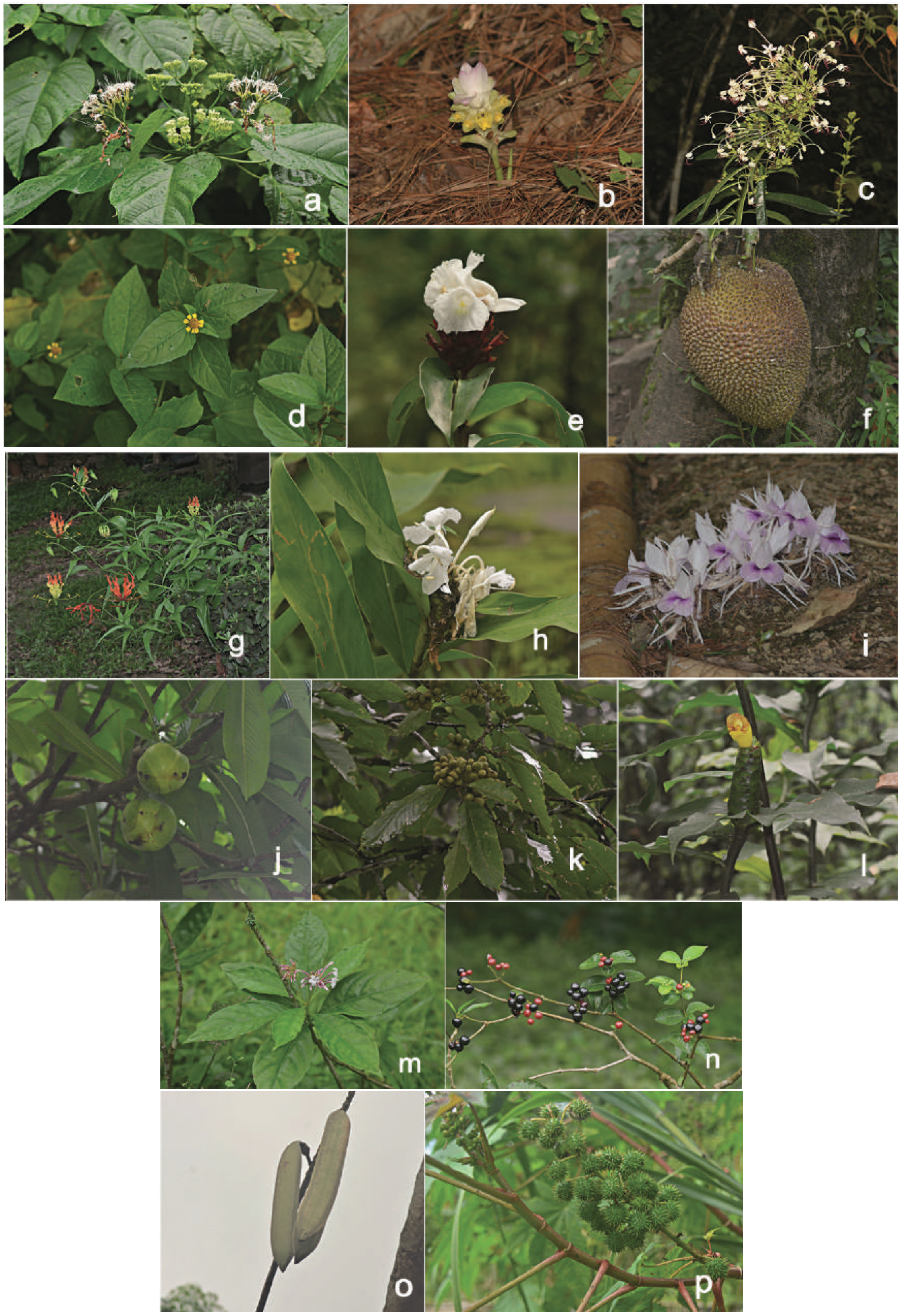

चित्र: **a**.क्लेरोडेंड्रम ग्लैंडुलोसम लिंडल. **b**.करकुमा एन्गुसटीफोलिया रोक्स्बर्घ **c**.*क्लेरोडेंड्रम इंडिकम (एल.) कुन्ट्ज़* **d**. एक्मेला पैनिकुलता (वाल. एक्स. डीसी.) आर. के. जानसेन **e**. चेइलोकोस्टस स्पेशोसस (जे.कोनिग)सी.डी.स्पीच. **f**. आर्टोकार्पस हेटरोफिलस लैम. **g**. *ग्लोरियोसा सुपरबा एल.* **h**.हेडिचियम कोरोनेरियम जे.कोनिग **i**.काम्फेरिया रोटुंडा एल. **j**.डिलेनिया इंडिका एल. **k**. *मैगनोलिया चंपाका (एल.) बेल. एक्स. पियरे* **l**. *कोस्टस पिक्टस* डी.डॉन **m.** राउवोल्फिया सर्पेन्टिना (एल.) बेंथ. एक्स. कुर्ज़ी **n.** राउवोल्फिया टेट्राफिला एल. **o**. ओरोजायलम इंडिकम (एल।) कुर्ज़ **p**. रिसीनस कम्युनिस एल.

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 59-60 (2024)

पूर्वोत्तर भारत में जैविक खेती: दृष्टिकोण और अवसर

हरेकृष्ण स्वैन, वाई. महेश, आर. कोट्टईमुथु और विजय

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

परिचय: पूर्वोत्तर भारत में निम्नलिखित आठ राज्य शामिल हैं: अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा। इन राज्यों में कुल मिलाकर भारत का 7.7% भूभाग है, और देश की लगभग आधी जैव विविधता मौजूद है, जिसमें से 32% स्थानिक है। पूर्वोत्तर भारत मुख्य रूप से देशी खेती के तरीकों का घर है, जो प्रकृति में जैविक हैं, और इस क्षेत्र में लंबे समय से चली आ रही स्वदेशी तकनीकी ज्ञान प्रणालियों पर निर्भर हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न फलों, सब्जियों, फूलों, मसालों, औषधीय पौधों और देशी फसलों की प्रचुरता है। बागवानी फसलों में विविधता, कृषि उत्पादन और जंगली संग्रह के लिए राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम दिशानिर्देशों के आधार पर जैविक बागवानी को लागू करके क्षेत्र के अर्थशास्त्र और पर्यावरण को बेहतर बनाने के अवसर को अपनाते है, या तो वस्तुओं के रूप में या अतिरिक्त मूल्य वाली वस्तुओं के रूप में।

जैविक खेती भारत में एक लंबे समय से चली आ रही परंपरा रही है, जिसमें मिट्टी के जीवन और स्वास्थ्य को संरक्षित करते हुए भूमि पर खेती और फसल उगाने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। यह सबसे सफल पारिस्थितिक और साधारणीय कृषि गहनता का नमुना है, जो बिना किसी प्रतिकूल पारिस्थितिक प्रभाव के स्वस्थ, उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उत्पाद प्रदान करते हुए पर्याप्त पर्यावरणीय और मानव स्वास्थ्य की गारंटी देता है। उत्पादन के उच्च साधारणीय स्तरों के साथ बढ़ी हुई उत्पादकता और विविधीकरण भी संभव है। भारत में 31 मार्च 2023 तक 10.17 मिलियन हेक्टेयर (2022-2023) भूमि राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के तहत पंजीकृत और जैविक प्रमाणन प्रक्रिया के अधीन थी। भारत ने लगभग 2.9 मिलियन टन प्रमाणित जैविक उत्पादों का उत्पादन किया, जिसमें चाय, कॉफी, कॉफी बीन्स, तिलहन, फाइबर, गन्ना, अनाज, बाजरा, कपास, दालें, सुगंधित और औषधीय पौधे, सूखे मेवे, सब्जियाँ और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ जैसे खाद्य पदार्थों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। वर्तमान परिदृश्य में प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों और मूल्य वर्धित या कमोडिटी उत्पादों दोनों के रूप में बागवानी उत्पादों का प्रतिशत बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण अवसर है। वैश्विक जैविक वाणिज्य में भारत की उपस्थिति वर्तमान में 1% से भी कम है, जो यह दर्शाता है कि वह कोई प्रमुख खिलाड़ी नहीं है।

उत्तर पूर्व क्षेत्र स्वदेशी कृषि पद्धतियों का घर है, जो मुख्य रूप से जैविक प्रकृति की हैं तथा स्वदेशी तकनीकी प्रणालियों पर निर्भर हैं, जो इस क्षेत्र में शताब्दियों से मौजूद हैं। इस क्षेत्र की कृषि, यहाँ की जलवायु, जो कि ज्यादातर वर्षा आधारित है, जैविक खेती के लिए आदर्श है। चूँकि यह क्षेत्र कृत्रिम उर्वरकों (<12.0 किग्रा/हे.) और रसायनों के कम उपयोग के साथ-साथ बायोमास और पशु खाद की प्रचुर आपूर्ति के लिए जाना जाता है, इसलिए यह जैविक खेती के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए पूर्वोत्तर को संभावित केंद्र के रूप में चुना हैं। कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय ने देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में जैविक खेती की क्षमता को मान्यता देते हुए "पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट" केंद्रीय क्षेत्र योजना शुरू की है। इस योजना में भाग लेने वाले राज्य अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा हैं। उत्पादकों और खरीददारों के बीच संपर्क को सुगम बनाने तथा बीज से लेकर प्रमाणीकरण तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया के विकास को बढ़ावा देने के साथ-साथ संग्रहण, प्रसंस्करण और विपणन के लिए सुविधाओं के सृजन के लिए इस योजना का उद्देश्य मूल्य श्रृंखला मोड में प्रमाणित जैविक उत्पादन को विकसित करना है।

फसल विविधता: पूर्वोत्तर भारत को जैव विविधता के लिए वैश्विक हॉटस्पॉट के रूप में मान्यता प्राप्त है, क्योंकि इसकी मिट्टी के प्रकार, जलवायु, वनस्पतियों और जीवों की समृद्धि बहुत अलग है। यह क्षेत्र फलों, सब्जियों, मसालों, औषधीय पौधों और फूलों, विशेष रूप से ऑर्किड की एक विस्तृत विविधता से समृद्ध है। इसी तरह, देशी फसलों की एक विस्तृत विविधता उपयोग के अवसरों की प्रतीक्षा कर रही है। जैविक बागवानी को चुनकर और जैविक उत्पादन दिशा-निर्देशों के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम को अपनाकर और जंगली संग्रह को वस्तु या मूल्यवर्धित उत्पादों के रूप में अपनाकर, बागवानी फसलों की इस विविधता से क्षेत्र की अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी को काफी मजबूत किया जा सकता है।

फलों की फ़सलें: उत्तर-पूर्वी भारत को कई सिट्रस प्रजातियों का मूल केंद्र माना जाता है। यह क्षेत्र अपने व्यापक वाणिज्यिक मीठे संतरे (सिट्रस साइनेंसिस) और खासी मंदारिन (सिट्रस रेटिकुलेटा) की खेती के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा, पूर्वोत्तर भारत और पूर्वी

हिमालय की तलहटी के उपोष्णकटिबंधीय वन बहुत सी, आम तौर पर खेती की जाने वाली प्रजातियों का घर हैं, जिनमें सिट्रस इंडिका (भारतीय जंगली संतरा), सिट्रस लैटिप्स, सिट्रस इचांगेंसिस, इचांग पापेडा, सिट्रस मेडिका, सिट्रस असामेंसिस, सिट्रस मैक्रोप्टेरा और सिट्रस हिस्ट्रिक्स शामिल हैं। पूर्वोत्तर भारत में मूसा एक्यूमिनटा और मूसा बाल्बिसियाना के लिए आनुवंशिक परिवर्तनशीलता का उच्चतम स्तर पाया गया है। मूसा फ्लेविफ्लोरा केवल मेघालय और मणिपुर में पाया जाता है। पूरे क्षेत्र में पाइरस, रूबस, रिब्स और प्रूनस में महत्वपूर्ण विविधताएँ देखी गई हैं। इसके अलावा, गार्सिनिया, एक्टिनिडिया, आर्टोकार्पस, फिलांथस, मायरिका और पर्सिया जैसी प्रजातियों से संबंधित कई अन्य फल जंगली में प्रचुर मात्रा में उगते हैं। पूर्वोत्तर भारत में लगभग 300 जंगली खाद्य पौधों की प्रजातियाँ मौजूद हैं, और इनमें से कुछ का सेवन जातीय और स्थानीय लोग करते हैं। एलेगनस लैटिफोलिया, जिसे सोह-शांग के नाम से भी जाना जाता है, पूर्वोत्तर भारत में व्यापक रूप से उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण संभावित फल फसलों में से एक है। इसके अलावा अन्य छोटे फल जैसे डोसिनिया इंडिका, डोसिनिया हुकरियाना, ट्री टमाटर (साइफोपमैंड्रा बेटासी) और पाइरस पाशिया आमतौर पर स्थानीय निवासियों द्वारा उगाए जाते हैं।

सब्जी और मसाला फसलें: वैश्विक खाद्य सुरक्षा की जैविक आधारशिला जंगली आनुवंशिक संसाधन हैं। भविष्य की चुनौतियों का सामना करने और खाद्य उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाए रखने के लिए आनुवंशिक संसाधनों और कृषि विविधता का प्रभावी उपयोग करना आवश्यक होगा। पूर्वोत्तर भारत के प्राथमिक कृषि समूहों में सब्जियाँ शामिल हैं, जिनमें सोलेनेसी, कुकुरबिटेसी, लेग्युमिनस, लीफ़ी, कोल, रूट, राइज़ोमेटस और बल्बस फ़सलें शामिल हैं। पूर्वोत्तर भारत में सोलेनेसी पौधों की एक विशाल श्रृंखला है। इस क्षेत्र में लगभग 35 सोलेनेसी प्रजातियाँ मौजूद हैं। इस क्षेत्र में मिर्च की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें कैप्सिकम एनम क्रिस्म एविकुलर, कैप्सिकम एनम क्रिस्म ग्रॉसम, कैप्सिकम एनम क्रिस्म लोंगम, कैप्सिकम चिनेंस, कैप्सिकम एक्सिमियम, कैप्सिकम फ्रूटसेंस, कैप्सिकम मिनिमम और कैप्सिकम प्यूब्सेंस शामिल हैं। दुनिया की सबसे तीखी मिर्च, जिसे भूत जोलोकिया या किंग चिली के नाम से जाना जाता है, पूर्वोत्तर भारत, विशेष रूप से नागालैंड की स्थानिक है और यह पूरे क्षेत्र में उगाई जाती है। इस क्षेत्र के सभी राज्यों में, खीरा सबसे व्यापक रूप से उत्पादित सब्जी फसलों में से एक है। यह क्षेत्र सब्जियों की 15 प्रजातियों का घर है, जिनमें से कुछ कम प्रसिद्ध हैं। पूर्वोत्तर भारत जंगली हरी सब्जियों की एक विविध श्रृंखला का घर है, जिसमें ऐमारैंथस विरिडिस, ऐमारैंथस लिविडस, ऐमारैंथस रेट्रोफ्लेक्सस और ऐमारैंथस स्पिनोसस; पुरोई साग (बेसेला अल्बा); रुमेक्स रैसिकेरियस; चेनोपोडियम एल्बम; और इपोमिया रेप्टांस शामिल हैं। कंद और प्रकंद वाली फसलें, जैसे डायोस्कोरिया एसपीपी., तारो (कोलोकेसिया एस्कुलेंटा), इपोमिया बैटेटस, मारेंटा अरुंडिनेशिया और एमोर्फोफैलस एसपीपी। कई अन्य मसाला फसलों के अलावा, अदरक और हल्दी भी पूर्वोत्तर राज्यों में महत्वपूर्ण विविधता दर्शाती है।

फूल, बांस, औषधीय और सुगंधित फसलें: पूर्वोत्तर क्षेत्र ऑर्किड की समृद्ध विविधता के लिए जाना जाता है। दुनिया भर में ऑर्किड की 17,000 से अधिक प्रजातियाँ मौजूद हैं, जिनमें से लगभग 1,290 भारत में और लगभग 700 उत्तर पूर्वी क्षेत्र में पाई जाती हैं। अरुणाचल प्रदेश में लगभग 620 प्रजातियाँ, सिक्किम में 523 और मेघालय में 324 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। कुछ वंश जिनमें आकर्षक और व्यावसायिक रूप से मूल्यवान देशी ऑर्किड प्रजातियाँ हैं, उनमें एरीड्स, अरुंडिना, सिंबिडियम, डेंड्रोबियम, पैपिओपेडिलम, फेयस, रेनेंथेरा और वांडा शामिल हैं। कैलेंथे मसुका इन प्रजातियों में से एक है। कटे हुए फूलों के लिए भी बहुत सी प्रजातियां हैं जैसे कि सिंबिडियम एसपीपी., डेंड्रोबियम नोबेल, फायस टैंकरविल्ले, वांडा एसपीपी., फेलेनोप्सिस एसपीपी., आदि। बांस पूर्वोत्तर भारत में एक प्रमुख फसल है और यहाँ के लोगों की जीवन शैली के लिए अत्यंत आवश्यक है। भारत में, बांस की आधी से अधिक प्रजातियाँ पूर्वोत्तर क्षेत्र से ही दर्ज की गई हैं, जिनमें लगभग 12 दुर्लभ और लुप्तप्राय प्रजातियाँ हैं। अरुणाचल प्रदेश में बांस के 12 वंश और 30 प्रजातियाँ हैं, सिक्किम में 8 वंश और 30 प्रजातियाँ हैं, मेघालय में 14 वंश के तहत कुल 30 प्रजातियाँ हैं, नागालैंड में लगभग 71 प्रजातियाँ हैं, मिजोरम में 35 प्रजातियाँ हैं। इस क्षेत्र का जनजातीय समुदाय लंबे समय से इन पौधों का उपयोग करता आ रहा है। रिपोर्टों से पता चलता है कि अरुणाचल प्रदेश में 500 से अधिक प्रजातियां, असम में 256, नागालैंड में 526, त्रिपुरा में 194, सिक्किम में 423 और मेघालय में 834 प्रजातियां औषधीय क्षमता रखती हैं।

जैविक खेती के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र पूर्वोत्तर भारत है। जैविक बागवानी के विकास के लिए अनगिनत अवसर और संभावनाएं हैं, जिसमें विशेष फसलों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस तरीके से इस क्षेत्र की प्रगति, इच्छुक किसानों को बेहतरीन जैविक तकनीकी विकल्प और राज्य सरकार की नीति सहायता प्रदान करने पर निर्भर करेगी। जैविक खेती में बदलाव से अपेक्षित अधिक लाभ की गारंटी के लिए, सही विपणन बुनियादी ढांचे और सम्बन्ध के साथ उच्च-मूल्य, कम-मात्रा मूल्य-वर्धित उत्पाद उत्पादन आवश्यक है। अन्यथा, आंदोलन को आवश्यक गति नहीं मिल सकती है। सबसे अच्छे इरादों के साथ भी, जैविक बागवानी तब तक आत्मनिर्भर नहीं होगी जब तक कि इसका नेतृत्व किसानों द्वारा नहीं किया जाता।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 61-62 (2024)

भारत के प्रमुख निर्यातकीय एवं राजकीय फल

नंदिता शर्मा, हेमन्त कुमार दास, बी. बी. टी. थाम, लैशिराम रिकी मैती, सौरभ सचान एवं विजय

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्रीय केंद्र, शिलांग

फल किसी भी स्थान के पारितंत्र को स्वस्थ बनाए रखने एवं वहाँ के खाद्य श्रंखला को सुचारू रूप से चलाने के लिए अति आवश्यक कारक होते है। भारत की जलवायु कुछ विशिष्ट फलों की उत्पादकता के लिए बेहद ही अनुकूल है। भारत के अनुमानित 7.05 मिलीयन हेक्टेयर क्षेत्र फल में फलों की व्यावासिक खेती की जाती है।

एफ. ए. ओ. (2021) के अनुसार कुल फलोत्पादन की तुलना में भारत में केला (26.45%), आम तथा अमरुद (43.80%) और पपीतें (39.30%) की पैदावर लगभग प्रतिवर्ष होती है। ताज़े व पके हुए फल मिनरल व् विटामिन्स, फाईबर्स की प्रचुरता के कारण आदिकल से ही ये जीवों के प्राकर्तिक आहार एवं औषधियों का अभिन्न हिस्सा रहें है। विशेष भोगोलिक स्वाद एवं उच्च गुणवत्ता के कारण भारतीय फलों की विदेशों में मांग लगातार बढती जा रही है।

यधपि भारत से आम, अंगूर, सेब, केला, अनार, अमरुद, चीकू संतरा, पपीता, लीची की उत्कृष्ट किस्मे जैसे : आम (लंगड़ा, चौसा, फाजली, कृष्णभोग, हिमसागर, नीलम, अलफांसी, बनेशन, बादामी), अंगूर (अनाब ए शाही, चीमा, साहेबी, किशमिश चोरनी, पेरलटू, अर्कवटी), सेब (मैकिन्टाश, चोबतिया, अनुपम, लाल अम्बरी, स्वर्ण स्वादिष्ट), केला (ड्वार्फ कैंवोंडीश, रोबस्टा, रसस्थाली,, पूवन), अमरुद (एलपडू बनारसी, चित्तीदार, इलाहाबादी सफेदा), पपीता (कुर्ग मधुरस, पूसा वैराईटी), चीकू (काला पत्ती, पिली पत्ती, पाला, गुथी), लीची (शाही, स्वर्णरूपा, चाड़ना, कस्बा, इलायची, पूर्वी) इत्यदि फल संयुक्त अरब अमीरात, बांग्लादेश, नेपाल, मलेशिया, नीदरलैंड, श्रीलंका, संयुक्त राज्य अमेरिका, कतर, ओमान और इराक आदि देशों को प्रचुर मात्रा में निर्यात किये जाते है। उत्पादकता, उपयोगिता, लोकप्रियता के आधार पर भारतीय फलों को उनके सर्वाधिक उत्पादक राज्यों को 'राजकीय फल' एवं कुछ विशिष्ट ' जी आई टैग' भी प्राप्त है।

भारत के कुछ राजकीय फलों का उनके वैज्ञानिक नाम, कुल, व उपयोगो का विवरण निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

राज्य	राजकीय फल	वैज्ञानिक नाम	पादप कुल	उपयोग
आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, हरियाणा, चंडीगढ़, पंजाब, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तेलांगना, कर्नाटक	आम	*मैन्जीफेरा इंडिका*	ऐनाकारडेयेसी	आचार, मुरब्बा, जैम, जैली, चटनी, पन्ना, पापड़, अमचूर, पाउडर, स्कवैश, जूस, आइसक्रीम, टाफी आदि बनाने में
अरुणाचल प्रदेश, केरल, तमिलनाडु	कटहल	*आर्टोकार्पस हेटेरोफिला*	मोरेसी	चारा, अचार, सब्जी एवं विभिन्न पारम्परिक व्यंजनों में
छत्तीसगढ़	शाखुआ	*शोरिया रोबस्टा*	डिप्टेरोकार्पेसी	चारा, लैंप आयल, लोक पारंपरिक औषधी व व्यंजनों में
उत्तराखंड	काफल	*माईरिका एस्कुलेंटा*	माईरिकेसी	अचार, चटनी, स्कवैश, शराब इत्यदि बनाने में
गोआ	काजू	*ऐनाकार्डियम ओक्सीडेंटल*	ऐनाकारडेयेसी	सलाद, सूखे मेवे, विभिन्न पारंपरिक व्यंजनों में
त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैंड	अन्नानास	*अनानास कामोस्स*	ब्रोमोलिएसी	जूस, स्कवैश, जैली, विभिन्न व्यंजनों में
मिज़ोरम	पैसन फ्रूट	*पैसीफ़्लोरा इडूलिस*	पैसीफ्लोरेसी	जूस, स्कवैश, जैली, विभिन्न व्यंजनों में
मेघालय	सोफी	*माईरिका एस्कुलेंटा*	माईरिकेसी	अचार, चटनी, स्कवैश, शराब इत्यदि बनाने में
सिक्किम	मेंडारिन नींबू	*सिट्रस रेटिक्यूलेटा*	रुटेसी	शरबत, अचार, चटनी, स्कवैश, दवाईयों में
असम	काजी नींबू	*सिट्रस लिमोन*	रुटेसी	शरबत, अचार, चटनी, स्कवैश आदि
जम्मू कश्मीर	सेब	*पाईरस मैलस*	रोजेसी	जूस, स्कवैश, जैम, जैली, शराब, इत्यदि बनाने में
पोंडिचेरी	बिल्व	*ऐजिल मार्मीलोस*	रूटेसी	शरबत, अचार, चूर्ण, चटनी, अर्क, दवाईयां इत्यदि बनाने में
लक्षद्वीप	ब्रेड फ्रूट	*आर्टोकार्पस ऐलटाईलस*	मोरेसी	अचार, चटनी, सूप, व विभिन्न पारंपरिक व्यंजनों में

लद्दाख	खुबानी	*प्रुनस अमेरिकाना*	लारेसी	स्क्वैश, अचार, वाईन, टाफी, अर्क, दवाईयां इत्यदि बनाने में
अंडमान निकोबार	कोक्क़म	*गारसिनिया इंडिका*	क्लूसियेसी	सरबत, अचार, चटनी, अर्क व दवाईयां बनाने में

निष्कर्ष: अनुकूल जलवायु एवं फलों की गुणवत्ता, उच्च पैदावार के कारण ही भारत को फलो की टोकरी भी कहा जाता है भारत में प्रतिवर्ष लगभग 108.34 मिलीयन टन फलोंत्पादन होता है। यदि इस विशाल उत्पादन के समुचित रख रखाव, आर्गेनिक उत्पादन व निर्यात की महत्ता पर सतत जोर दिया जाये तो निसन्देह भारत में अधिक कृषि रोजगार एवं विदेशी मुद्रा आमदनी व पर्यटन एवं अर्थव्यवस्था में उतरोत्तर वृद्धि होगी।

चित्र: भारत के कुछ राजकीय व उपयोगी फल

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 63-66 (2024)

जलवायु परिवर्तन परिपेक्ष्य में ऊपरी गंगा रामसर साइट के अतुलनीय जैविक संसाधन

आरती गर्ग

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र, देहरादून

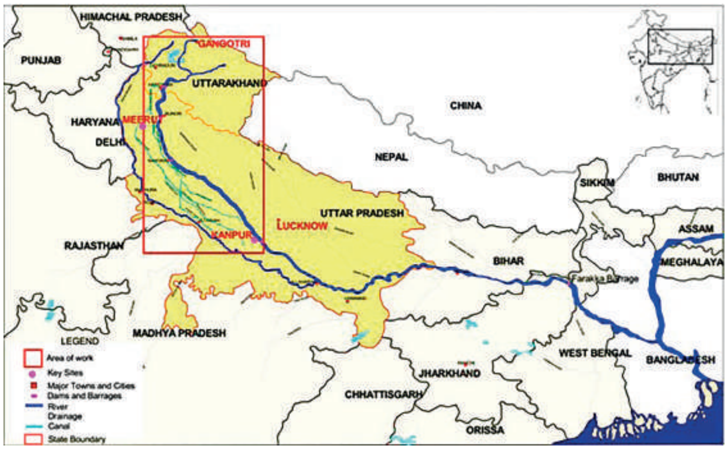

उत्तराखंड में लगभग 7010 मीटर ऊंचाई पर स्थित गंगोत्री से निकलकर, पवित्र गंगा नदी दक्षिण क्षेत्रीय हिमालय पर्वतमाला की ढलानों से बहते हुए उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल राज्यों को पार कर लगभग 2525 किमी की दूरी तय करने के पश्चात बंगाल की खाड़ी में प्रविष्ट हो जाती है। उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित गंगा नदी के महत्वपूर्ण ऊपरी क्षेत्र को वर्ष 2005 में 'ऊपरी गंगा नदीय रामसर स्थल' घोषित कर दिया गया ताकि इस क्षेत्र में संरक्षित जैव विविधता की ओर ध्यानाकर्षित किया जा सके तथा इसके संरक्षण में उचित योगदान दिया जाये। ऊपरी गंगा नदीय रामसर स्थल का परिक्षेत्र गाजियाबाद जिले के बृजघाट से प्रारंभ होकर बदायूँ जिले के नरोरा तक विस्तृत है तथा 28°10'26" और 28°47'18" उत्तर और 78°07'04" तथा 78°25'57" पूर्व में लगभग 11364 हेक्टेयर में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में गंगा नदी काफी उथली है जिसके बीच-बीच में गहरे पानी के तालाब, कई द्वीप और खुले जल से संपन्न लगभग 50% क्षेत्र में फैली हुई लगभग 130 आर्द्रभूमियां हैं। यहाँ का वायु-तापमान 11.5–35.5°C तथा जल-तापमान 15.6–30.2°C रहता है तथा इसके परिसर में 12 किमी का बफर क्षेत्र भी शामिल होता है अतः इसका कुल क्षेत्रफल 254482 हेक्टेयर में फैला होने के साथ अनगिनत पारिस्थितिकता समुदायों से संपन्न है। यह रामसर साईट संकटग्रस्त एवं 'लुप्तप्राय' गंगा-डॉल्फ़िन (प्लैटनिस्टा गैंगेटिका) और 20,000 से अधिक जलीय-पक्षियों को संरक्षण प्रदान करते हुए रामसर स्थलों के मानदंड 2 और 5 को पूरित करती है। ऊपरी गंगा रामसर स्थल में गंगा नदी की गहराई सामान्य तौर पर बरसात में 300–362 सेमी तथा शुष्क गर्मी में 50–150 सेमी तक रहती है तथा मानसून में यहाँ की पारदर्शिता 3–5 सेमी ही होती है। इस क्षेत्र में फाइटोप्लांकटन, जूप्लांकटन, मछलियों, सरीसर्पों और पक्षियों का एक समृद्ध जमावड़ा है जिनकी कई जातियाँ लाल सूचीबद्ध जातियों की सूची में शामिल हैं साथ ही यह क्षेत्र लगभग 419 एंजियोओस्पेर्म्स के हाइड्रोफाइटिक और स्थलीय-जातियों से संपन्न है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में अनियमित वर्षा और गंगा नदी के उपरी जलाशयों द्वारा अनियमित जल निर्वहन के परिणाम स्वरूप उपरी गंगा का प्रवाह भी अनियमित हो जाता है जिसका विपरीत प्रभाव यहाँ के आवासीय जलीय-जंतुओं, आवासीय पक्षियों और वानस्पतिक सम्पदा के प्राकृतिक आवास की दृष्टि से और पूरी रामसर क्षेत्र के लिए हानिकारक है।

गंगा-निर्मित आर्द्रभूमियों के जल को अत्यधिक पवित्र माने जाने के कारण इसे मुख्यतः दाह संस्कार, विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों, तीर्थ-यात्रियों, साधु-संतों, और जन-साधारण के पवित्र स्नान के उपयोग में लाया जाने के साथ ही नदी के पानी को दैनिक-कार्यक्रमों, घरेलू सीवेज-निपटान, औद्योगिक अपशिष्ट निर्वहन, अनिर्दिष्ट कृषि-अपवाह, मछलीपालन, कृषि सिंचाई, सामूहिक मेलों का आयोजन और आसपास के क्षेत्रों को कृषि, चराई, कछुओं और मगरमच्छों के लिए घोंसला बनाने और आश्रय स्थल बनाने आदि कार्यों में भी उपयोग किया जाता है। प्रगतिशील आधुनिकीकरण, शहरी विकास, बस्तियों और कृषि-क्षेत्र के विस्तार, कीटनाशकों/शाकनाशी और उर्वरकों का छिड़काव, नदी-तट का कटाव और उतार-चढ़ाव, जनसंख्या दबाव इत्यादि के फलस्वरूप गंगा नदी के जल-स्तर, नाम्भूमियों एवं पारिस्थितिकी तंत्र को विभिन्न प्रकार से हानि पहुँचाने के साथ ही यहाँ पर संरक्षित लुप्तप्राय जातियों के संरक्षण हेतु उचित एवं संरक्षित क्षेत्रों का आभाव होने लगा है।

गंगीय आर्द्रभूमियों की वनस्पतिक सम्पदा: ऊपरी गंगा रामसर क्षेत्रफल के विस्तृत सर्वे के परिणाम स्वरूप यहाँ 419 वनस्पति प्रजातियाँ संरक्षित पाई गयी है जिनमें औषधीय अनावृतबीजी पादप, आर्थिक रूप से उपयोगी पादप, दैनिक संसाधनों को पूरित करने वाली जातियां, लकड़ी प्रदान करने वाली जातियां तथा पवित्र-पावन माने जाने वाले अतुलनीय वृक्ष भी संरक्षित हैं। यहाँ के निवासी पादपों की सूची

में उल्लेखनीय हैं - *अल्टरनेन्थेरा फिलोक्सेरोइड्स, अरुंडो डोनैक्स, बकोपा मोनिएरी, निम्फिया रूब्रा, एन्हइड्रा फ्लुक्टुंस, सैलिक्स टेट्रास्पर्मा, केरेक्स फ़ेडिया, ईलिओकार्पस सिरेटस, अल्हगी मौरोरम, एमिलिया जावानिका, इनुला फाल्कोनेरी* और *स्कोइनोप्लेक्टस आर्टिकुलैटस* तथा भारत में पायी जाने वाली *एम्सिंकिया कैलीसिना* की एकमात्र आबादी जो रामसर स्थल में संरक्षित, पादप संरक्षण में रामसर स्थल की अहम् भूमिका की पुष्टि करते हैं। इनके अतिरिक्त आर्द्रभूमियों के सामान्य मैक्रोफाइट्स में उल्लेखनीय हैं - *एजोला पिनाटा, सेराटोफिलम डीमर्सम, आईकोर्निया क्रैसिप्स, हाइड्रिला वर्टिसिलेटा, हाइग्रोर्हाईज़ा अरिस्टेटा, आईपोमिया एक्वेटिका, लेम्ना पर्पुसिला, लुडविजिया एडसेन्डेंस, नाजाज़ माइनर, निलम्बो न्यूसीफेरा, निम्फिया नौचाली, निम्फोइड्स हाइड्रोफिला, पोटामोजिटोन क्रिस्पस, पोटामोजिटोन नोडोसस, पोटामोजिटोन पेक्टिनैटस, स्यूडोर्हेफिस स्पाइनिसेंस, स्पाइरोडेला पोलिर्हीराइजा, ट्रैपा नेटेन्स, यूट्रिकुलेरिया औरिया, यूट्रिकुलेरिया स्टिलेरिस* इत्यादि। गंगा नदी के तटीय क्षेत्रों में जल-सतह के ऊपर उभरने वाले पादपो में प्रमुख मैक्रोफाइट्स हैं *अल्टरनेथेरा सेसिलिस, अम्मानिया बैसीफेरा, ईकोर्निया क्रैसिप्स, हाइग्रोफिला ऑरिकुलाटा, लुडविजिया एडसेन्डेंस, पर्सिकेरिया बार्बेटा, रैनन्कुलस स्क्लीरेटस, फाइला नोडिफ्लोरा, सैसियोलेपिस इंटरप्टा, स्कोएनोप्लेक्टियेला आर्टिकुलाटा, टाइफा अन्गास्तिफ़ोलिया* इत्यादि।

गंगीय आर्द्रभूमियों की जीव-जंतु सम्पदा : ऊपरी गंगा नदी में प्रमुख रूप से पाई जाने वाली मछलियों में उल्लेखनीय है यहाँ संरक्षित दुर्लभ लुप्तप्राय और संकटग्रस्त 'राष्ट्रीय जलीय-पशु' गंगा डॉल्फ़िन (*प्लैटिनिस्टा गैंगेटिका*) की शेष एकल संख्या, घड़ियाल और मछली खाने वाला मगरमच्छ (*गेवियलिस गैंगेटिकस* और *क्रोकोडाइलस पालस्ट्रिस*), नरम शेल वाले कछुए (*एस्पिडरेटेस गैंगेटिकस*), मॉनिटर छिपकली (*वैरेनस बेंगालेंसिस*), संकटग्रस्त जीव-जंतु जैसे ऊदबिलाव (*लुटरा लुटरा*) तथा महत्वपूर्ण पक्षियों की अनेकों संकटग्रस्त जातियों की मण्डली जिनमे प्रमुख वर्णित है - भारतीय रोलर चिड़िया (*कोरेसिअस बेन्घलेंसिस*), बार-हेडेड गीज़ (*एंसर इंडिकस*)

भारतीय आइबिस (*सयूदिबिस पैप्पिलोसा*) की जीवित आबादी, तथा पक्षियों की जातियों में बड़ा जलकाग (*फ़ैलाक्रोकोरस कार्बो*), सारस क्रेन (*गृस एंटीगोन*), काली गर्दन वाला सारस (*ज़ेनोरिन्चस एशियाटिकस*), बार हेडेड हंस (*एन्सर इंडिकस*), भारतीय रोलर (*कोरासियास बेंघालेंसिस*), ब्राह्मणी तारा (*स्टर्निया पगोडारम*) ब्लैक-हेडेड आइबिस (*थ्रेस्कियोर्निस मेलानोसेफालस*) इत्यादि।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से गंगेय परिसर में पोषित एवं संरक्षित लुप्तप्राय और संकटग्रस्त स्तनधारी पशु 'गंगा नदी डॉल्फिन' की निरंतर घटती आबादी गंभीर चिंता का विषय बनी हुई है। अतः इसके संरक्षण हेतु भारत सरकार ने वर्ष 2009 में इसे "राष्ट्रीय जलीय-पशु" घोषित किया तथा भारत के वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम (1972) की अनुसूची तथा लुप्तप्राय प्रजातियों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कन्वेंशन (CITES) के परिशिष्ट-1 में इस में भी इसे "लुप्तप्राय" के

रूप में इनके विशेष संरक्षण के अभिप्राय से सूचीबद्ध कर दिया गया। गंगा नदी डॉल्फिन लुप्तप्राय होने के साथ ही इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह गंगा नदी के संपूर्ण नदी-पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य की विश्वसनीय संकेतक है।

विश्व स्तरीय सबसे प्राचीन एवं अद्वितीय वृक्ष : दसवां सबसे विशाल बरगद (*फाईकस बेंघालेंसिस*) जिसकी जीवित आयु लगभग 500 वर्ष है तथा विश्व का सबसे पुराना खिरनी (*मनिलकारा हेक्सेंड्रा*), जिसकी जीवित आयु लगभग 600 वर्ष है, इस स्थल की अद्वितीय वन सम्पदा एवेम अनूठी प्रतिष्ठा को दर्शाता है। इसी परिसर में पाए जाने वाले प्राक्रितक अक्षत पावन-वन - मांडू पावन वन एवं सिद्ध्वरी पावन वन तथा पावन स्थल - अम्बिकेश्वर पावन स्थल, के साथ ही प्राचीन गुरुकुल, इस रामसर स्थल की गुमनाम विरासत का खुलासा कर इस स्थल का अनूठा व्याख्यान करते हैं।

ऊपरी गंगा रामसर साइट पर जलवायु परिवर्तन, वर्षा-विचलन, वैश्विक ऊष्मता का मंडराता संकट: सन 2006 की रिपोर्ट के अनुसार उपरी गंगा क्षेत्र का वार्षिक हवाई तापमान सन 2030 तक सामान्य से 0.9°–2.6° (± 0.6°C–0.7°C) तथा सन 2050 तक 2–3°C बढ़ने के साथ सन 2050 तक कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और अन्य ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता दोगुनी होकर 2085 तक लगभग 740 पीपीएम की खतरनाक अवस्था तक पहुँचने की आशंका जताई जा चुकी है। बढे हुए तापमान और गर्मी के संभावित प्रभाव में उपरी गंगा रामसर साइट के जल-संसाधनों, जलाशयों, संबंधित वन क्षेत्रों, जैविक संसाधनों, वनस्पतियों और जीव-जंतुओं की संख्या में अपरिवर्तनीय निम्नीकरण के संकेतक हैं। चूँकि जल भंडार और आर्द्रभूमियाँ प्रकृति में हाइड्रोलॉजिकल और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, इसलिए कार्बन डाइऑक्साइड स्तर और तापमान वृद्धि आर्द्रभूमियों में सिकुड़न पैदा कर पूरी रामसर साइट की जैव-विविधता के लिए हानिकारक है। परिणामस्वरूप वन-आवरण रिक्तिकरण और तटरेखा कटाव से अस्वाभाविक बाढ़ और द्वीपों का डूबना, पक्षियों तथा जीव-जंतुओं के आवास स्थान तथा घोंसले और प्रजनन-मैदानों का निम्नीकरण होने के साथ ही इनके खाद्य संसाधनों की अनियमितता खाद्य-जाल में कठोरता के कारण बड़े पैमाने पर पाक्षि-प्रवासन और रामसर साईट की पाक्षि मंडली में शीर्णता, भटकाव सम्पुर्ण समुदाय और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन में विसंगति जैसी गंभीर परिस्थिति उत्पन्न कर देती है, जो भारत की इस महत्वपूर्ण गंगा नदी रामसर साइट के वर्तमान सम्मान को बनाए रखने के मानदंडों की पूर्ति के लिए हानिकारक है।

वर्तमान जलवायु के सन्दर्भ में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार हिमालयी शिखर पर्बतों का जल-जमाव लगभग 16 मीटर प्रति वर्ष की दर से घटने व शिखरिया हिमनदों के पिघलाव के परिणामस्वरूप अति-संवेदनशील रामसर स्थलों में तापमान वृद्धि, मानसून की असामानता व बरसात की तीव्रता में वृद्धि नमभूमियों के पारिस्थितिकी तंत्र में विविध प्रतिकूलताएं उत्पन्न करती हैं । नैटकॉम के अनुसार, मौजूदा जलवायु संबंधी विपथन के अंतर्गत वर्ष 1951 से अब तक प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता में अबतक 3523 घन मीटर की गिरावट हो चुकी है जिसमे अनुमानित 1820 घन मीटर प्रति वर्ष गिरावट होने के साथ ही सन 2050 तक पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता लगभग 1140 घन मीटर प्रति वर्ष ही रह जाएगी I ऐसे व्यापक जलवायु और जल-स्तर के उतार-चढ़ाव का आर्द्रभूमियों पर सबसे स्पष्ट और तीव्र होने के साथ ही वनस्पति, जीववर्ग तथा इनसे जुड़े जैविक आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र-चक्र के लिए अत्यंत हानिकारक हैं जिसके कारण नदियों तथा नमभूमियों के आधार में सिकुड़न और 'जल तालिका' में कमी सम्पूर्ण अर्द्रभूमि पारिस्थितिक तंत्र को नष्ट करने की संकेतक है। अतः वर्मन परिपेक्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण ऊपरी गंगा रामसर स्थल के

पारिस्थितिकी तंत्र विपथन को नियंत्रित करने की दिशा में प्रभावी रूप से प्रतिक्रियाशील होना आनिवार्य होने के साथ ही ऐसी रणनीति विकसित करने की आवश्यकता है जिसके तहत जलवायु परिवर्तन तथा उससे जुड़े तापमान और वर्षा के दुष्परिणामों से इस रामसर स्थल तथा इसमें संरक्षित प्राचीन धरोहरों, प्राकृतिक पुष्पीय और लुप्तप्राय जैविक संसाधनों का संरक्षण किया जा सके।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 67-68 (2024)

कृत्रिम बीज

एम. यू. शरीफ़[1], एस. पी. पांडा[2] और रजत पाल[1]

1.भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्रीय केंद्र, कोयंबत्तूर
2.भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद

कृत्रिम बीज प्राकृतिक बीज का एक नया एनालॉग है जिसमें कृत्रिम जैल मैट्रिक्स में संलग्न एक दैहिक भ्रूण होता है। यह मुराशिगे टी थे, जिन्होंने 1970 के दशक की शुरुआत में विचार-विमर्श के दौरान पहली बार सिंथेटिक बीजों की अवधारणा पर चर्चा की थी। उन्होंने 1977 के दौरान बेल्जियम के गेन्ट में बागवानी फसलों के लिए ऊतक संवर्धन पर संगोष्ठी में अपने विचार प्रस्तुत किए। बाद में ग्रे ने अगस्त 1986 में डेविस, कैलिफोर्निया में कृत्रिम बीजों पर पहली संगोष्ठी आयोजित की। हालाँकि, अजवाइन और अल्फाल्फा जैसी फसलों में कीथ रेडेनबॉग एट अल. (1986) द्वारा सफल कृत्रिम बीज तैयार करने का मानकीकरण किया गया था।

मुख्य रूप से दो प्रकार के कृत्रिम बीज होते हैं। वे हैं:

1. हाइड्रेटेड कृत्रिम बीज और 2. सुखाया हुआ कृत्रिम बीज।

चित्र 1: हाइड्रेटेड कृत्रिम बीज

चित्र 2: हाइड्रेटेड कृत्रिम बीजों का अंकुरण

हाइड्रेटेड कृत्रिम बीज वे होते हैं जिनमें दैहिक भ्रूण होते हैं जो व्यक्तिगत रूप से कैल्शियम एल्गिनेट (चित्र 1) जैसे हाइड्रोजेल में समाहित होते हैं। हाइड्रेटेड कृत्रिम बीजों की तैयारी की प्रक्रिया के दौरान, भ्रूण को सोडियम एल्गिनेट घोल के साथ मिलाया जाता है और

कैल्शियम एल्गिनेट कैप्सूल बनाने के लिए कैल्शियम नमक के घोल में डाला जाता है। फिर कैप्सूल को बाँझ आसुत जल में धोया गया और अंकुरण के लिए सिंथेटिक मीडिया की सतह पर रखा गया ताकि ताजा पौधे प्राप्त हो सकें (चित्र 2)। सूखे बीज वे होते हैं जो पॉलीथीन ग्लाइकॉल में दैहिक भ्रूण और कैली के मिश्रण को कोटिंग करके बनाए जाते हैं। तटवर्ती मिश्रण को बाँझ परिस्थितियों में कई घंटों तक सुखाया गया, फिर सूखे मिश्रण को इन विट्रो में कल्चर माध्यम पर रखा गया और फिर से हाइड्रेट होने दिया गया और भ्रूण के जीवित रहने के लिए स्कोर किया गया।

कृत्रिम बीजों के उपयोग

1. कृत्रिम बीजों से प्रजनन के ऐसे लाभ मिल सकते हैं जो अन्य विधियों में नहीं मिलते।

2. कृत्रिम बीजों से, मौसम की परवाह किए बिना पूरे वर्ष पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

3. कृत्रिम बीजों को बिना किसी संगरोध विभाग से गुजरे एक देश से दूसरे देश में ले जाया जा सकता है क्योंकि वे रोगाणु मुक्त होते हैं।

4. कुछ फसलों में प्राकृतिक बीज बहुत जल्दी अपना कार्य करना बंद कर देते हैं। ऐसी फसलों में, कृत्रिम बीज एक विकल्प प्रदान करेंगे।

चित्र – 3:संवर्धन माध्यम में पूर्ण पौधा उगाना

शोषणकारी प्रतिस्पर्धा के इस) युग में जैव विविधता का संरक्षण समय की मांग है। माइक्रोप्रोपेगेशन, सोमैटिक एम्ब्रियोजेनेसिस, कृत्रिम बीज उत्पादन जैसी इन विट्रो तकनीकों का अनुप्रयोग बड़े पैमाने पर प्रजनन और विभिन्न जीनोटाइप के संरक्षण में बहुत मददगार होगा। प्रत्येक शोध का अंतिम लक्ष्य दो प्रमुख कारकों 'समय और लागत' पर समाप्त होता है। दुनिया भर में मानव जाति पौधों में खोजी गई किसी भी नई विधि को तभी स्वीकार करती है जब वह लाभदायक, तेज़ और कम लागत पर प्रतिदिन कई मिलियन पौधे पैदा करने में सक्षम हो। इसलिए, जैव प्रौद्योगिकी के आधुनिक युग में, कम समय और कम कीमत पर सभी मौसमों में कई स्वस्थ पौधे प्राप्त करने के लिए विभिन्न अत्यधिक मशीनीकृत प्रक्रियाएं विकसित की गई हैं।

ऊपर वर्णित दैहिक भ्रूणजनन और कृत्रिम बीज उत्पादन की तकनीकें प्रसार और संरक्षण दोनों की अपार संभावनाएं रखती हैं। द्वीप की वनस्पतियों के संरक्षण और गुणन के लिए इन विधियों का उचित और समय पर उपयोग, समय रहते द्वीप के खोए हुए गौरव को बहाल करने में बहुत लाभकारी होगा।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 69-71 (2024)

टेस्ट ट्यूब वन

[1]एम. यू. शरीफ़, [2]एस. पी. पांडा एवं [1]रजत पाल

1.भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्रीय केंद्र, कोयंबत्तूर
2.भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, दक्कन क्षेत्रीय केंद्र, हैदराबाद

परिचय : भारत में वानिकी दोराहे पर है। पर्यावरणीय क्षरण और वनों की कटाई के दिनों के दौरान, वन आवरण बढ़ाने के नवीन तरीके सामने आए हैं। हमारे वैज्ञानिकों ने टेस्ट ट्यूब पौधों का उत्पादन करने के लिए पौधों के ऊतक संवर्धन के क्षेत्र में सफलता हासिल की है, जिससे पेड़ों को घरेलू बनाया जा सके। इस क्षेत्र का सबसे लाभप्रद पहलू 'सूक्ष्मप्रवर्धन' है, जहां कम समय और स्थान के भीतर, विशेषकर पौधे के किसी भी हिस्से से, कई पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

पौधे जो विकासवादी पथ पर उन्नत चरण में हैं वे विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं से बने होते हैं, जो बनावट, आकार, उत्पत्ति और कार्य में भिन्न होती हैं। ऐसी कोशिकाएँ जो कमोबेश एक जैसी होती हैं और एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं, ऊतक कहलाती हैं; और इन कोशिकाओं में जीवन का रहस्य है। एक कोशिका की जटिल संपूर्णता तक बढ़ने की इस जन्मजात क्षमता को 'टोटिपोटेंसी' कहा जाता है। यह पशु कोशिकाओं के विपरीत है, पौधों की कोशिकाओं को यह अतिरिक्त क्षमता प्रदान करती है। कई पौधों में, टोटिपोटेंसी की इस शक्ति के लिए इष्टतम बाहरी वातावरण के साथ-साथ उचित उत्तेजना की भी आवश्यकता होती है। कुछ पौधों को अपनी पूर्णशक्ति क्षमताओं को व्यक्त करने के लिए केवल सबसे हल्के अनुनय की आवश्यकता होती है, जबकि कुछ पौधे एक कार्यात्मक परिपक्व इकाई रूप में विकसित होने से पहले कई परिवर्तनों से गुजरते हैं। पादप वैज्ञानिकों ने पादप कोशिकाओं की इस जन्मजात क्षमता के महत्व को समझा और टेस्ट ट्यूबों में बड़ी संख्या में पौधों का सफलतापूर्वक उत्पादन किया, जिससे 'टेस्ट ट्यूब वन' की अवधारणा वास्तविकता में बदल गई।

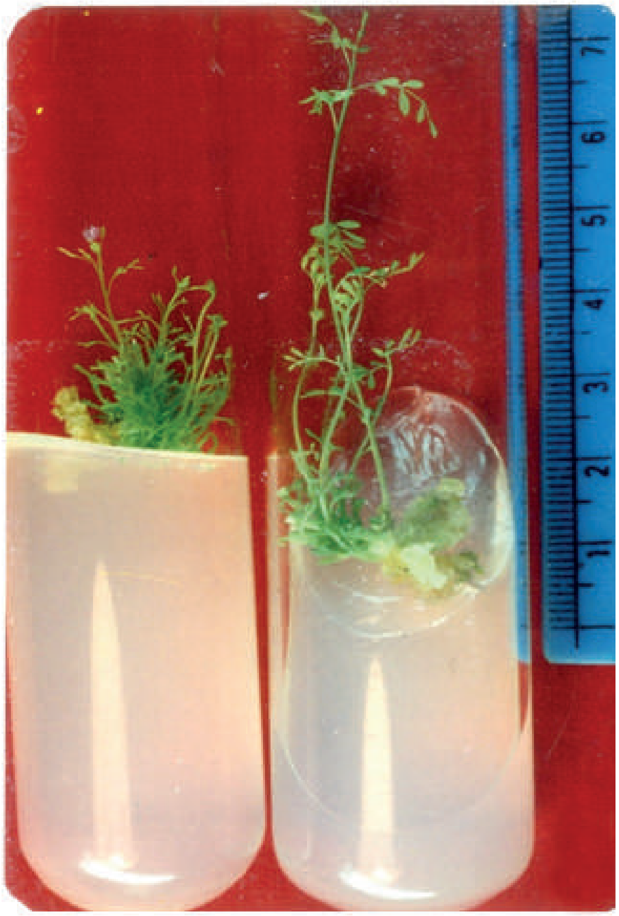

चित्र – 1: परखनली में वन्य वृक्षों के ऊतक संवर्धन का प्रारंभिकीकरण

इतिहास : ऐतिहासिक रूप से, यह 1838 में श्लेडेन और श्वान द्वारा प्रस्तावित कोशिका सिद्धांत था जिसने प्रयोगशाला स्थितियों के तहत ऊतकों के बढ़ने की संभावना का सुझाव दिया, इसलिए इसे ऊतक संवर्धन अनुसंधान का अग्रदूत माना जाता है। यह 1902 के दौरान जी. हैबरलैंड्ट ही थे जिन्होंने पहली बार विभिन्न पौधों की पत्तियों का उपयोग करके कृत्रिम रूप से कोशिका संवर्धन किया। हालाँकि, हैबरलैंड्ट अपने प्रयोग में विफल रहे और शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई, उन्हें यह नहीं पता था कि बाद में इन प्रयोगों को कितनी बड़ी सफलता मिलेगी। हालाँकि हैबरलैंड अब नहीं रहे, लेकिन उनके विचार उस समय की वैज्ञानिक सोच में व्याप्त हो गए और 1930 के दशक तक टिशू कल्चर अत्यधिक सफल हो गया। फिलिप आर. व्हाइट ने 1934 के दौरान पोषक शोरबा पर टमाटर की जड़ की युक्तियाँ उगाई। पांच साल बाद पी. नोबेकोर्ट और आर.जे. फ्रांस में गौथेरेट सिंथेटिक मीडिया पर विभिन्न पौधों की संस्कृतियाँ स्थापित करने में सफल रहे। विशेष रूप से वन वृक्ष ऊतक संवर्धन के संबंध में कनाडा के प्रो. जे.एम. बोंगा और डर्ज़न ग्रुप का कार्य उल्लेखनीय है, भारत में चंदन और शहतूत पर काम क्रमशः बी.ए.आर.सी., बॉम्बे और आई.आई.एस.सी., बैंगलोर में डॉ. पी.एस. राव और डॉ. लक्ष्मी सीता द्वारा किया गया। यूकेलिप्टस, सागौन और बांस पर एन.सी.एल., पुणे में डॉ. ए.एफ. मस्कारेनहास ग्रुप द्वारा काम किया जाता है। इसके अलावा, हमारे देश के विभिन्न विश्वविद्यालय विभागों में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण विभिन्न पेड़ों पर काम चल रहा है।

प्रणाली विज्ञान : इसके अलावा, हमारे देश के विभिन्न विश्वविद्यालय विभागों में विभिन्न आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पेड़ों पर काम चल रहा है। इस तरह की प्रतिभा की तकनीक का शोधन हुआ, जिससे ऊतक संवर्धन की प्रक्रिया उल्लेखनीय रूप से सरल हो गई। टिशू कल्चर प्रयोगशाला में एक ऐसा क्षेत्र होगा जहां पोषक मीडिया को आटोक्लेव या प्रेशर कुकर में पकाया जाता है। आटोक्लेव भाप को उच्च दबाव पर विकसित होने और रोगाणुओं को मारने की अनुमति देते हैं जो तैयार किए जा रहे मीडिया में मौजूद हो सकते हैं। टिशू कल्चर प्रयोगशालाओं में तैयार किए जाने वाले मीडिया अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

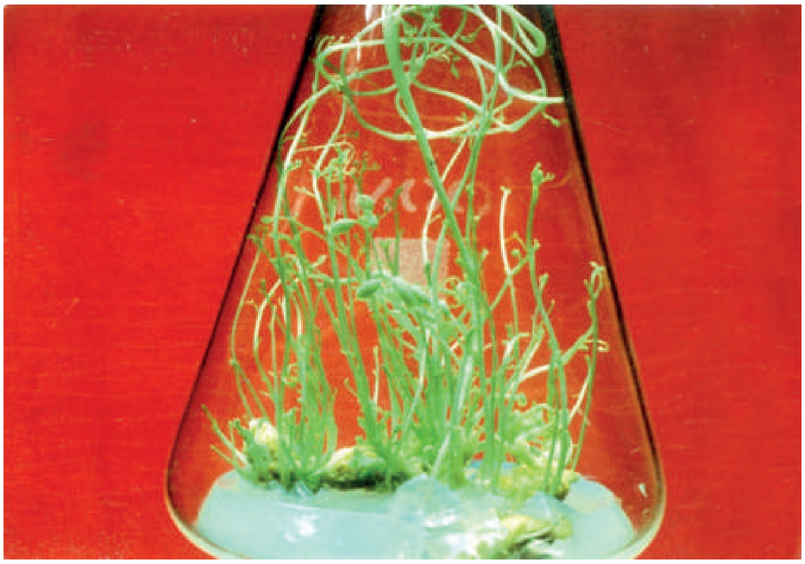

चित्र – 2: संवर्धन माध्यम पर उगने वाले ऊतक संवर्धन वाले वन वृक्ष

संवर्धन में पौधों के ऊतकों को विशिष्ट अनुपात में आवश्यक खनिज, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट और अपेक्षित पादप हार्मोन प्रदान करना पड़ता है क्योंकि संवर्धन के प्रारंभिक चरण में कोशिकाओं में जड़ों और प्रभावी पत्ती के ऊतकों की कमी होती है और इसलिए, वे अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते हैं। कई रेडीमेड मीडिया फॉर्मूलेशन अब उपलब्ध हैं, लेकिन सबसे अधिक सार्वभौमिक रूप से उपयोग किया जाने वाला "एमएस मीडियम' है जिसे अमेरिका के विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय के टी. मुराशिगे और एफ. स्कूग (1962) द्वारा तैयार किया गया है।

इन उपर्युक्त उल्लिखित सामग्रियों के अलावा, कुछ अन्य योजक और पूरक, मीडिया को समृद्ध करते हैं। कोमल नारियल(टेंडर कोकोनट) पानी मीडिया में उपयोग किया जाने वाला एसा ही एक तरल पदार्थ है एवम मीडिया में नारियल पानी का उपयोग सबसे पहले वैन ओवर बेक (1940) द्वारा प्रदर्शित किया गया था। टमाटर और मशरूम जैसे बड़ी संख्या में पौधों के स्रोतों के अर्क को बाद में टिशू कल्चर मीडिया में विकास सहायक के रूप में उपयोग किया गया। हालाँकि, नारियल के दूध ने पसंदीदा पूरक के रूप में अपना स्थान बरकरार रखा है।

चूँकि जल संस्कृति मीडिया का सबसे बड़ा घटक है, इसलिए इसकी गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देना होगा। चूंकि नल का पानी चिकित्सकीय रूप से शुद्ध नहीं है, इसलिए घुली हुई अशुद्धियों से मुक्त आसुत जल का उपयोग किया जाता है। उपयोग किए जाने वाले रसायन अच्छी गुणवत्ता के होने चाहिए क्योंकि मीडिया को उन रसायनों से अनावश्यक रूप से दूषित नहीं किया जाना चाहिए जिनकी आवश्यकता नहीं है। फिर तैयार मीडिया को सड़न रोकनेवाला या रोगाणु मुक्त बनाया जाना चाहिए।

जिस मीडिया कक्ष में संस्कृति मीडिया पकाया जाता है वह साफ-सुथरा होना चाहिए। स्वच्छता सुनिश्चित करने के लिए जितनी अधिक सावधानी बरती जाएगी, बाद में संक्रमण की संभावना कम होगी और सफलता दर बेहतर होगी। जीवाणु, शैवाल और कवक सूक्ष्मजीवों द्वारा संदूषण। इसके अलावा, संवर्धित किए जाने वाले पौधे के ऊतकों को उसके सभी प्राकृतिक रोगाणुओं को मारकर रोगाणु मुक्त भी बनाना पड़ता है। पौधों की सामग्री से माध्यम तक संक्रमण के प्रसार को रोकने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। चूंकि ऑटोक्लेविंग द्वारा सामान्य उच्च तापमान उपचार से पौधे के ऊतक नष्ट हो जाएंगे, इसलिए एक्सप्लांट की नसबंदी मर्क्यूरिक क्लोराइड जैसे एंटीसेप्टिक एजेंटों और कभी-कभी एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग करके भी की जाती है।

माध्यम की सतह पर योजना ऊतक के स्थानांतरण की प्रक्रिया को 'इनोक्यूलेशन' कहा जाता है और इसे सड़न रोकने वाली स्थितियों के तहत पूरा किया जाता है। इसके लिए आमतौर पर एक विशेष कैबिनेट का उपयोग किया जाता है जिसे लैमिनर फ्लो चैंबर के रूप में जाना

जाता है। ऊष्मायन के बाद, कल्चर ट्यूबों को एक विशेष कमरे में रखा जाता है जिसे 'ऊष्मायन कक्ष या विकास कक्ष' कहा जाता है। एयर कंडीशनर का उपयोग करके ऊष्मायन कक्ष का तापमान 25°C पर बनाए रखा जाता है और कृत्रिम प्रकाश से रोशन किया जाता है जो विकास को उत्तेजित करता है।

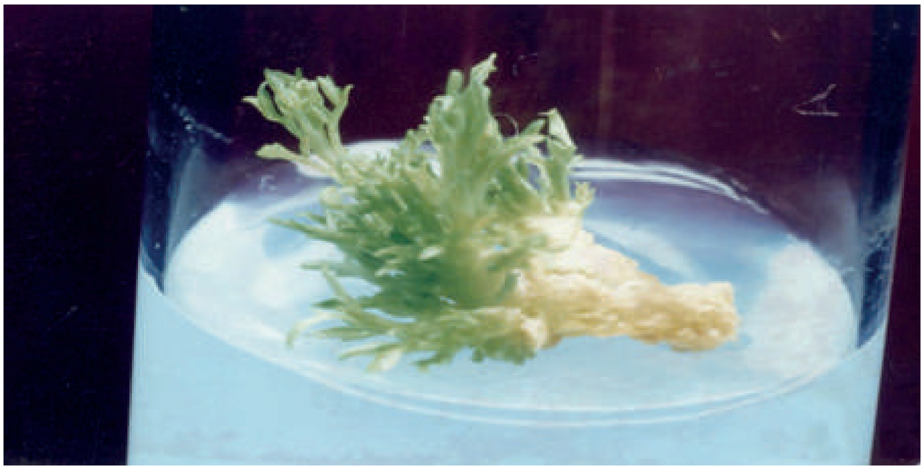

चित्र – 3: कल्चर फ्लास्क में पूरी तरह से विकसित वन वृक्ष

लाभ : वन वृक्षों के ऊतक संवर्धन अनुसंधान से प्राप्त प्रमुख लाभ माइक्रोप्रोपेगेशन और सोमैटिक एम्ब्रियोजेनेसिस हैं।

वन सुधार के लिए माइक्रोप्रोपेगेशन का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है और यह जैव प्रौद्योगिकी लाभों के प्रत्यक्ष प्रयोगशाला से भूमि हस्तांतरण का एक उदाहरण है। यह तकनीक विशेष रूप से यूकेलिप्टस, सागौन, चंदन, साइट्रस और गार्सिनिया आदि जैसे पेड़ों के प्रसार में सफल है। यहां, जब एक्सप्लांट को पोषक माध्यम पर प्रत्यारोपित किया जाता है, तो विकास आम तौर पर तीन अलग-अलग तरीकों से होता है, जैसे (i) कली प्रसार, (ii) अपस्थानिक शूट गठन और (iii) कैलस गठन। पहली श्रेणी के तहत, एक्सप्लांट में मौजूद अक्षीय या पार्श्व कलियाँ लंबी होने लगती हैं और प्रत्येक अक्ष में बार-बार कई शूट का उत्पादन करती हैं। दूसरी श्रेणी में, एक्सप्लांट के पौधे के ऊतक सक्रिय हो जाते हैं और कई बढ़ते बिंदुओं की ताजा फसल को जन्म देते हैं, जिनमें से प्रत्येक शूट या पौधे का उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। तीसरी श्रेणी में, एक्सप्लांट के ऊतक प्रसार में शामिल होते हैं और 'कैलस' नामक ऊतक का एक सघन द्रव्यमान बनाते हैं, जिससे कई अंकुर अलग-अलग होते हैं। दैहिक भ्रूणजनन के विपरीत, यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि, संबंधित व्यक्ति को मिट्टी में रोपाई से पहले प्रोलिफ़ेरेटेड शूट में कृत्रिम जड़ें पैदा करनी होती हैं। दैहिक भ्रूणजनन एक ऐसी प्रक्रिया है जहाँ उपयुक्त कृत्रिम परिस्थितियों में, एक्सप्लांट कैलस बनाता है जो बाद में सड़न, अंकुर और बीजपत्र वाले शिशु पौधे में विभेदित हो जाता है। ये दैहिक भ्रूण सामान्य भ्रूणों से इस मायने में भिन्न होते हैं कि इनमें बाहरी क्षति से सुरक्षा के लिए बीज आवरण जैसा कोई बाहरी आवरण नहीं होता है। हालाँकि, हाल ही में इन दैहिक भ्रूणों को उपयुक्त मैट्रिक्स के तहत संलग्न करके, कृत्रिम भी तैयार किया गया है जो वास्तविक बीजों की नकल करते हैं।

निष्कर्ष : दुनिया का वन क्षेत्र खतरनाक रूप से घट रहा है जबकि लकड़ी की आपूर्ति और मांग के बीच का अंतर बढ़ रहा है। अगर कोई सतत आर्थिक विकास और प्रकृति के पारिस्थितिक संतुलन के बारे में सोचता है तो इस अंतर को पाटना होगा। माइक्रोप्रोपेगेशन वन वृक्षों के बड़े पैमाने पर गुणन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे "टेस्ट ट्यूब वन" बनते हैं। यह प्रीमियम गुणवत्ता वाले वृक्षों के तेजी से गुणन के लिए भी उपयोगी है, जिससे अंततः शक्ति, उच्च उपज और बेहतर स्वास्थ्य की स्थिति में वृद्धि होती है। इसके अलावा, प्रयोगशाला में पूरे वर्ष पौधों को गुणा किया जा सकता है और समय और मौसम से स्वतंत्र असीमित संख्या में बेहतर पौधे तैयार किए जा सकते हैं। इस प्रकार वर्तमान में, ऊतक संवर्धन द्वारा वन वृक्षों के बड़े पैमाने पर प्रसार को कई भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा सक्रिय रूप से प्रेरित किया गया है और भारत दुनिया में इन वैज्ञानिकों का सबसे बड़ा समूह है। इसलिए हाल के वर्षों में मनुष्य के निर्मम शोषण के कारण जिस हरियाली को इतनी क्रूरता से त्याग दिया गया है, उसे अब प्रतिस्थापित किए जाने का उचित मौका है। इस प्रकार प्रयोगशालाओं से, विज्ञान के आशीर्वाद बहते हैं, जो पृथ्वी को हरियाली के नए कालीन में ढँक देते हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ अपने आस-पास के वातावरण को देखकर गर्व से कह सकें कि "मेरी घाटी कितनी हरी-भरी है"।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 72-76 (2024)

‘ई- कचरा’: एक गंभीर समस्या

देबस्मिता दत्ता प्रामाणिक एवं डिम्पल जैन

औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता -700 016

पिछले कुछ दशकों में हुई इलेक्ट्रॉनिक क्रांति ने हमारे जीवन को सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण कर दिया है। विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक आविष्कारों के माध्यम से संचारतंत्र को विस्तार एवं व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलने के साथ-साथ वैश्विक रोजगार के अवसर भी कई गुना बढ़ गए हैं। वर्तमान समय में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकासात्मक कार्य तेजी से चलने के फलस्वरूप आज नित नए-नए उन्नत तकनीक वाले वैद्युतिक यंत्र का उत्पादन हो रहा है। तेजी से बढ़ते हुए नए इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के उत्पादन और तकनीकी प्रगति के कारण अपेक्षाकृत पुराने मॉडल के इलेक्ट्रॉनिक सामानों को खारिज व प्रकृति में फेंके जाने की प्रवत्ति पहले से कई गुना बढ़ गई है। रेफ्रिजरेटर, एयरकंडीशनर, कूलर, टेलीविज़न, हीटर, आई-पैड, कॉम्पैक्टडिस्क (सीडी), प्रिंटर, स्कैनर, कैलकुलेटर, फैक्समशीन, बैटरीसेल, कम्प्यूटर, वाशिंगमशीन, सेलूलरमोबाइल, टैब, कैमरा, ऑटोमैटिक गाड़ी आदि आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के निर्माण वप्रयोग ने मानव सभ्यता को नया आयाम तो दिया है, लेकिन इसके साथ ही खराब होने वाली इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं को गैरतरीके से ‘ई - कचरा’ या ‘ई - अपशिष्ट’ के रूप में परिवेश में छोड़ने के कारण आधुनिक समय में एक गम्भीर पर्यावरणीय समस्या को जन्म दिया है। हालाँकि आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक मशीनों के उत्पादन की दृष्टि से हलांकि विकासशील देशों का स्थान विकसित देशों से काफी पीछे है, परंतु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारी मात्रा में ‘इ-कचरा’ विकसित देशों से विकासशील देशों में प्रवाहित किया जा रहा है। यू.एन.ग्लोबलई-वेस्टमॉनिटर 2020 के रिपोर्ट के अनुसार, 2019 में दुनियाभर में 53.6 मिलियन मीट्रिकटन इलेक्ट्रॉनिक कचरा उत्पन्नहुआ था, जिसमे से ‘ई - कचरा’

1. नई दिल्ली के रेलवे स्टेशन के पीछे फेंका गया ई- कचरा

उत्पादन में चीन (10.128 मिलियन मीट्रिकटन), संयुक्त राज्य अमेरिका (6.918 मिलियन टन) और भारत (3.230 मिलियन मीट्रिक टन) में सबसे आगे है। वहीं रिपोर्ट के मुताबिक, विकासशील देशों में भारत 'ई-कचरे' के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। 'ई-कचरे' के उत्पादन की दृष्टि से भारत में महाराष्ट्र (20%), तमिलनाडु (13%), आंध्रप्रदेश (12%), उत्तर प्रदेश (10%), पश्चिम बंगाल(10%), दिल्ली (9%), कर्नाटक(9%), गुजरात (9%) और मध्यप्रदेश (8%) प्रमुख हैं [इंगोले, 2018] (चार्ट 1) । केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सी. पी. सी. बी.) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में'ई-अपशिष्ट' का उत्पादन 2018-19 में 7.71 लाख टन और 2019-20 में 10.14 लाख टन था, जो साल में लगभग 31% की वृद्धि दर के बराबर है। दुनिया में उत्पादित इस 'इ-कचरे' में केवल 17.4 प्रतिशत उत्पादों का पुनर्नवीनीकरण किया गया है। यू.एन.ग्लोबलई-वेस्टमॉनिटर 2020 की रिपोर्ट में यह कहा गया है की वैश्विक 'ई-कचरा' का उत्पादन 2030 तक न्यूनतम 74 मीट्रिक टन तक पहुंचजाएगा, जो अगर ठीक से रिसाइकिल नहीं किया गया तो निश्चित रूप से मानव समाज के लिए एक बड़ा खतरा बन जाएगा।

'ई -कचरे' के बढ़ने के कारण व मूल स्त्रोत

विश्व में आईटी उद्योग में तेजी से उत्थान के कारण दैनिक जीवन में प्रयोज्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के उपयोग में विप्लव आ चुका है। बाजार में उन्नत तकनीक वाला उत्पाद आने के साथ-साथ पुराने मॉडल के गैजेट्स बेकार पड़ जाते हैं और उन्हें त्याग दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप आज बड़ी मात्रा में जहरीले 'ई-कचरे' का उत्पादन हो रहा है। यह अत्यन्त चिन्ताजनक विषय है कि जितनी तीव्रता से यह उत्पन्न हो रहा है उसका निपटान उस दर से नहीं हो पा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट – 'एन्यू सर्कुलर विज़न फॉर इलेक्ट्रॉनिक्स'के अनुसार वर्तमान समय में दुनियाभर में हर साल करीब 50 मिलियन टन इलेक्ट्रॉनिक और इलेक्ट्रिकलअपशिष्ट (ई-कचरा) का उत्पादन हो रहा है।

संरचना और घटकों के आधार पर, 'ई-कचरे' को निम्नलिखित 06 मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे: क) तापमान उपकरण: रेफ्रिजरेटर, हीटर, एयरकंडीशनर, फ्रीजर आदि; ख) स्क्रीन: लैपटॉप, टैबलेट, टीवी, मॉनिटर; ग) बड़े उपकरण: वाशिंग मशीन, इलेक्ट्रिक स्टोव, बड़ी प्रिंटिंग मशीन, डिश वॉशर; घ) छोटे उपकरण: माइक्रोवेव, वैक्यूमक्लीनर, वेंटिलेशन उपकरण, टोस्टर, केतली, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, कैमरा; च) छोटे आईटी और टेलीकॉम उपकरण: मोबाइल फोन, जीपीएस उपकरण और छ) लैंप: फ्लोरोसेंट लैंप, एलईडी लैंप, उच्च तीव्रता वाले डिस्चार्ज लैंप।

पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के ऊपर 'ई - कचरे' का प्रभाव

'ई - कचरा' पर्यावरण के लिए गंभीर समस्या बन चुका है। यह देखा गया है की इलेक्ट्रॉनिक रद्दी में प्लास्टिक और कांच के अलावा लगभग 40:30:30 के आधार पर क्रमशः धातु, प्लास्टिक एवं अपवर्तित ऑक्साइड्स होते हैं। काफी मात्रा में भारी धातुओं एवं अन्य प्रदूषित पदार्थों जैसे लोहा, जस्ता, एल्यूमीनियम, सीसा, टिन, चाँदी, आर्सेनिक, गिलट, क्रोमियम, कैडमियम, पारा, इण्डियम, सैलिनियम, वैनेडियम, रुथेनियम, कैडमियम, लेड, मरकरी, पॉली-क्लोरीन युक्त बाइफिनाइल्स के विद्यमान रहने के कारण मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए कहीं अधिक नुकसानदेह होते हैं। इलेक्ट्रॉनिक कचरा बहुत से रासायनिक तत्वोंव यौगिकों से मिलकर निर्मित किया जाता है, जैसे सेलफ़ोन में 40 से भी अधिक अलग अलग घटक विद्यमान है। इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं और यंत्र में उपयोग आनेवाले अधिकतर अवयवों में बायोडिग्रेडेबल होने की विशेषता नहीं पाई जाती है और न तो इनमें मिट्टी में घुल-मिल जाने का ही गुण होता है। इसमें स्थित हानिकारक अवयव मिट्टी में प्रवेश करते हैं और जल निकायों को दूषित करते हैं। 'ई-कचरा' खुले में जलाये जाने पर हवा में वाष्पीकृत होकर जहरीली गैसों को छोड़ता है और वायु प्रदुषण को बढाताहै। आज के दिन में 'ई- कचरा' से उत्पादित बढ़ती हुई हानिकारक रासायनिक वस्तुओं के कारण गम्भीर बीमारियों का संकट कई गुणा बढ़ गया है (तालिका 1)।

'ई-कचरे' का नियंत्रण और प्रबंधन: भारत की स्थिति

अब समय आ गया है कि 'ई-कचरे' के उचित निपटान और पुनर्चक्रण पर ध्यान दिया जाए, अन्यथा पूरा विश्वव मानव कुल शीघ्र ही इस काबलि बन जाएगा। इसके लिए विकसित देशों को विकासशील देशों के साथ अपनी तकनीकों को साझा करना होगा। इस समस्या को सही तरीके से निपटाने के लिए पूरे विश्व को एक होना चाहिए।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा 'ई-कचरा' प्रबंधन के लिए कुछ नियमों को बनाया गया है,जो की 01/10/2016 से लागू हो गया है। इस नियम के तहत इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बनाने वाले निर्माताओं, ई-अपशिष्ट संग्रह केंद्रों, डीलरों,

उपभोक्ताओं, भंजकों, पुनर्चक्रणकारियों एवं राज्य सरकारों को भी कुछ जिम्मेदारियां सौंपी गई है। केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 केअधीन 'ई-अपशिष्ट (प्रबंधन) नियम', 2022 को अधिसूचित किया है। यह नया नियम 1 अप्रैल 2023 से लागू हो गया है। इस नियम के तहत केंद्र सरकार ने 'ई-कचरा' श्रेणी में आने वाली वस्तुओं की संख्या बढ़ाकर 21 से 106 कर दी है।

भारत में 'ई-कचरे' का निपटान प्रायः अनौपचारिक पुनर्चक्रण केन्द्रों में होता है जहाँ पुन: उपयोग या हाथ से तोड़ने हेतु इन्हें अलग-अलग किया जाता है। फिर मूल्यवान धातुओं को चुनकर साफ करने के पश्चात इन्हें अकुशलव विषाक्त उत्पाद व्यवस्था में नष्ट करने की प्रक्रिया से गुजारते हैं। आज के दिन में यह देश के 22 राज्यों में 468 अधिकृत पुनर्चक्रणकारी संस्थाएं हैं, जिनके पुनर्चक्रण की क्षमता 13.85 लाख टन है। 'ई-कचरे' के निपटान के तरीके में इनका सही विधि से संग्रहण और नियंत्रण करना, अनुपयोगी सामानों का प्रतिष्ठापन करके उसके उपयोग को बढ़ावा देना, उपभोक्ताओं के लिए एक्सचेंज ऑफ रयाबायबैक योजनाओं द्वारा छोड़े गए इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को वापस लेना, 'ई–कचरा'संग्रह करने वाले लोगों को आर्थिक लाभ देकर प्रोत्साहित करना, पुरानी, लेकिन अधिक समय तक चलने वाली वस्तुओं की कम कीमत रखकर इनके दोबारा प्रयोग को बढ़ावा देकर'ईकचरे' को कुछ हद तक कम करना, नगरपालिका व जन समुदाय की भागीदारी के माध्यम से 'ई-कचरे' का बेहतर निष्पादन किया जाना आदि प्रमुख हैं। 'ई-कचरा' प्रबंधन के संबंध में, सरकार ने 2012 में, 'ई-कचरा प्रबंधन और हैंडलिंग नियम-कानून' को पारित किया, जिसमें कहा गया है कि विशिष्ट प्रबंधक एजेंसियों के पास लाइसेंस अवश्य होना चाहिए और प्रदूषण मानकों तथा श्रम कानूनों का पालन होना चाहिए। इसमें उल्लंघनकारी एजेंसियों, उद्योगों और कंपनियों पर 1 लाख तक का जुर्माना और 7 साल तक की जेल की घोषणा भी की गयी है। ई-पारसारा प्रा. लिमिटेड, भारत की पहली सरकारी अधिकृत इलेक्ट्रॉनिक कचरा पुनर्चक्रणकारी कंपनी है, जिसने सितंबर 2005 से पर्यावरण के अनुकूल तरीकों से अपशिष्ट विद्युत और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के संचालन, पुनर्चक्रण और पुन: उपयोग में लगी हुआ है। हालाँकि, सभी देशों की सरकारें कचरा प्रबंधन को लेकर सचेत है और ज़रूरी कानून भी बनाये गए है, लेकिन लोगों के सहयोग के बिना यह काम संभव नहीं है। कड़े कानून बनाने के साथ-साथ उपभोक्ताओं की जागरूकता भी आवश्यक है। लोगों को इसके भयंकर परिणामों से आगाह करवाना अत्यंत जरूरी है, तभी प्रत्येक घर से निकलने वाले 'ई-कचरे' को कम किया जा सकेगा। यदि सरकार और जनता दोनों जागरूक हो जाएँ तो निश्चय ही भविष्य में 'ई-कचरे' की समस्या से छुटकारा पाया जा सकेगा।

2. पुनर्चक्रित उत्पादों से निर्मित दुकान व 'जीरो वेस्ट शॉप'

'ई-कचरा' प्रबंधन– भविष्य संभावनाएँ:

भारत सरकार द्वारा जारी रिपोर्टों के अनुसार (योजना आयोग रिपोर्ट, 2014), यह अनुमान है कि वर्ष 2031 तक, 'ई-कचरा' उत्पादन बढ़कर 165 मिलियन टन और 2050 तक 436 मिलियन टन हो जाएगा। 'ई-कचरा'पुर्नचक्रण प्रक्रिया के लिए इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की छंटाई, निराकरण और प्रौद्योगिकी सहित विभिन्न कार्यों को निपटाने के लिए विशाल जन-शक्ति व कार्यबल की आवश्यकता होती है। ये सुविधाएं विशेषज्ञ, अर्द्ध निपुण और सभी प्रकार के नए श्रमिकों के लिए रोजगार के बड़े अवसर प्रदान करेगी।

इस तरह 'इ-कचरा'प्रबंधन उद्योग व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत बन जाएगा। न्यू टाउन, कोलकाता डेवलपमेंट अथॉरिटी द्वारा लगभग तीन साल पहले 'जीरो वेस्ट शॉप'खोली गई थी, जहॉं, ई-कचरा जैसे बैटरी, कंप्यूटर व सेलफोन के पार्ट्स, प्लास्टिक की बोतलें और टायर जैसे विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट उत्पादों को स्वंय सहायता समूह के सदस्यों द्वारा पुनर्नवीनीकरण किया जा रहा है।

इन अपशिष्ट उत्पादों से बैग, कटोरा, फ्रीजचुंबक, रस्सी, कारपेट, दीवार पर लटकाने वाले शो-पीस, चटाई, सैंडेल आदि उत्पादों को बनाया जाता है और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लोगों द्वारा विपणन किया जाता है। सरकारी पहलों के साथ-साथ, ऐसे सहयोगी कार्यों से आर्थिक रूप से गरीब लोगों की जीविका विकसित हो सकती है।

'ई-कचरा उत्पादन करने वाले राज्यों के नाम व प्रतिशत'

उत्पादन करने वाले राज्य	प्रतिशत में (%)
महाराष्ट्र	20%
तमिलनाडु	13%
आंध्र प्रदेश	12%
उत्तर प्रदेश	10%
पश्चिम बंगाल	10%
दिल्ली	9%
कर्नाटक	9%
गुजरात	9%
मध्य प्रदेश	8%

तालिका 1: हानिकारक रासायनिक अपशिष्टों का विवरण

क्र. सं.	हानिकारक रासायनिक अपशिष्ट	स्रोत	प्रभाव
1	पारा	ज्वालामुखी का उद्गीरन, दावानल, शैल मिट्टी का अपक्षय, जीवाश्म ईंधन और नगरपालिका या चिकित्सा अपशिष्ट का दहन, समुद्र के पानी का वाष्पीकरण	मस्तिष्क, फेफड़े और गुर्दे की बीमारी, वमन।
2	गंधक	राख, धातु के धूल, औद्योगिक खनिज व धातुकर्म के स्लैग और अपशिष्ट	सिर दर्द, उच्च रक्तचाप, फुफ्फुसीय रोग, कैंसर, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस।
3	लेड	पुराने कैथोड रे ट्यूब, टेलीविजन मॉनिटर और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों	बच्चों के मस्तिष्क का विकास रुक देना; केंद्रीय स्नायु तंत्र और गुर्दे को नुकसान पहुंचाना, शरीर के प्रतिरक्षा शक्ति को कम करना।
4	कैडमियम	जला हुआ कोयला और तेल	यकृत और गुर्दे में जमा होता है; स्नायु तंत्र का क्षतिसाधन
5	बेरियम	इलेक्ट्रॉन ट्यूब, प्लास्टिक और रबर, स्नेहक योजक	मांसपेशियों को कमजोर करना, उच्च रक्तचाप, सांस लेने में समस्या, मस्तिष्क में सूजन, पेट में जलन आदि।
6	क्रोमियम	खनन, धातु, इस्पात और मिश्रधातु, पेंट, रंजक, लकड़ी और कागज उद्योग	डी.एन.ए. का विकृतीकरण; दमा व ब्रोंकाइटिस।
7	चाँदी	ग्राफिक कलाएं, औद्योगिक एक्स-रे, फोटो फिनिशिंग, धातु उद्योग, फोटोग्राफिक फिल्म, कागज, कीचड़, धातु प्रतिस्थापन कारतूस, इलेक्ट्रोलाइटिक उपकरण	मस्तिष्क, किडनी, फेफड़े, आंख और यकृत को नुकसान पहुंचाना।
8	एंटीमनी	खनन उद्योग, धातुकर्म प्रक्रियाएं, जीवाश्म ईंधन से ऊर्जा उत्पादन, सिरामिक/ ग्लास और रंग द्रव्य विनिर्माण उद्योग	त्वचा, आंख, फेफड़ों में ज्वलन पैदा करने वाला।
9	बिस्मथ	खदान, तेल क्षेत्र और अपशिष्ट जल प्रसंस्करण संयंत्र, उर्वरक और कीटनाशकों का बहाव, निर्माण स्थल से अपशिष्ट निर्माण सामग्री और शहरी क्षेत्रों के सीवर	चर्म रोग,अवसाद आदि।
10	गैलियम	चिकित्सा अपशिष्ट, इलेक्ट्रॉनिक स्क्रैप, बैटरी अपशिष्ट, धातु परिष्करण उद्योग अपशिष्ट	सांस की तकलीफ; गले में जलन; छाती में दर्द।
11	कोबाल्ट	पेट्रोलियम और रासायनिक उद्योग, सीमेंटेड कार्बाइड, रिचार्जेबल बैटरी और सुपर-मिश्रधातु, चुंबकीय मिश्रधातु और इस्पात उपकरण का कारखाना	वमन, दृष्टि की हानि, अस्थमा, हाइपर व हाइपो थायरॉयड।
12	लोहा	नगरपालिक का ठोस कूड़ा, स्टील फर्नीचर और टायर जात रद्दीमाल	फेफड़ों के कैंसर।
13	सेलेनियम	ऊर्जा उत्पादन, धातु और तेल शोधन, खनन और कृषि सिंचाई	बुखार, पेट दर्द, छाती की मांसपेशियों की समस्या, यकृत का बढ़ना, दस्त, गले में खराश आदि।
14	निकेल	स्टेनलेस स्टील, दंत चिकित्सा उपकरण अपशिष्ट, गाड़ी का निकास प्रणाली, पाइप	फेफड़े का कैंसर, नाक का कैंसर।
15	आर्सेनिक	सर्किट बोर्ड, एलसीडी डिस्प्ले, कंप्यूटर चिप्स	फेफड़े और त्वचा का कैंसर।
16	बेरीलियम	कोयले से चलने वाले बिजली संयंत्रों, स्लैग, गार्नेट, सिलिका, रेत और कुचले हुए कांच कारखाने के उपोत्पाद	फेफड़े का कैंसर व बेरील्लिओसिस।
17	प्लास्टिक व पीभीसी	कंप्यूटर के मदरबोर्ड, सीपीयू, माउस, कीबोर्ड, कार्ट्रिज, पेनड्राइव, कॉर्ड, स्कैनर, टेलीफोन	प्रजनन और विकास संबंधी समस्याएं, प्रतिरक्षा प्रणाली को नुकसान पहुंचाना, नियामक हार्मोन की गतिविधि में रुकावट पैदा करना आदि।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 77-78 (2024)

कलम और पेंसिल

मानस भौमिक एवं डिम्पल जैन

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय, कोलकाता

प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से मानव सभ्यता फली-फूली। प्रकृति से भोजन और आश्रय जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के बाद उन्होंने अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए मूर्त एवं अमूर्त विरासत बनाई। उनकी विचार प्रक्रिया, उपयोगी प्राकृतिक तत्वों द्वारा भौतिक रूप में अमल में आई। कलम, पेंसिल और कागज का आविष्कार आगे बढ़ने के लिए एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। औद्योगिक अनुभाग भारतीय संग्रहालय की बॉटनिकल गैलरी में, कलम और पेंसिल पर एक सुंदर विकासवादी इतिहास प्रदर्शित है। इससे संबंधित कहानी नीचे उल्लेखित है:-

लेखन मानव सभ्यता का एक महत्वपूर्ण आविष्कार है, जो उपकरणों और तकनीकों से समय के साथ विकसित हुआ तथा जिसने हमें अपने इतिहास का अभिलेख रखने की अनुमति दी।

प्राचीन मिस्र के लेखक ईख की कलम का इस्तेमाल करते थे जो कि एक एकल ईख की स्ट्रा से बनी होती थी, जिसमें कट और आकार दिया जाता था। इन कलमों द्वारा लिखने के लिए, 'पेपिरस' पौधे का उपयोग एक सतह के रूप में किया जाता था। रीड कलम लंबे समय तक न चलने एवं कठोर होने के कारण उन्हें क्विल से बदल दिया गया था। क्विल कलम होती हैं जो कि बड़े पक्षियों के उड़ान पंख से बनी होती थीं। इन पंखों की खोखली कड़ी में स्याही होती है जो टिप तक बहती है, जिसे केशिका क्रिया द्वारा कड़ी में काट दिया जाता है। कलम से लिखने हेतु विभिन्न साम्रगियों,जैसे कि- चर्मचत्र एवं चर्मपत्र का उपयोग किया जाता था। ऐसा ज्ञात है कि 100 ईसा पूर्व में कुछ मृत सागर सूचीपत्र,कलमों से लिखे गए थे। पहले कलम को एक चौकोर सिरे में काटा जाता था तथा कई शताब्दी तक ईख की कलम की नकल की जाती थी। 17वीं शताब्दी के बाद से, जब लेखन अधिक लोकप्रिय हो गया तो कलम को अधिक लचीला बनाया जाने लगा।

आधुनिक पेंसिल की उत्पत्ति प्राचीन रोमन लेखन उपकरण, जिसे '**स्टाइलस**' कहा जाता है, से हुई। शास्त्रियों ने इस पतली धातु की छड़ी का उपयोग पेपिरस पर एक हल्का लेकिन पढ़ने योग्य निशान छोड़ने के लिए किया। शुरुआती स्टाइलस लेड से बने होते थे। 1564 में इंग्लैंड के बोरोडेल में एक बड़े ग्रेफाइट जमा की खोज के बाद ग्रेफाइट बड़े पैमाने पर उपयोग में आया। लेड की तुलना में गहरा निशान छोड़ने के लिए ग्रेफाइट की सराहना की गई, यह खनिज इतना नरम और भंगुर होने की वजह से इसे एक धारक की आवश्यकता पड़ती थी। मूल रूप से, ग्रेफाइट की छड़ी डोरी में लपेटी जाती थी, और फिर चमड़े में ढकी जाती थी। बाद में, ग्रेफाइट को खोखली लकड़ी की छड़ी में डाला जाता था और इस प्रकार, लकड़ी के आवरण वाली पेंसिल का जन्म हुआ। यह शुरुआत में ग्रेफाइट था और बाद में ग्रेफाइट और मिट्टी के चूर्ण का मिश्रण। वे स्याही के विपरीत आसानी से उपयोग होने, न फैलने और गलती होने परआसानी से मिट जाने के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गई थी।

नूर्नबर्ग, जर्मनी, 1662 में पहला बड़े पैमाने पर उत्पादित पेंसिल का जन्मस्थान था। इसमें ग्रेफाइट, सल्फर और सुरमा के मिश्रण का इस्तेमाल किया गया था। 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के दौरान एक सक्रिय पेंसिल उद्योग का विकास, फैबर-कासल, लाइरा, स्टेडलर एवं अन्य कंपनियों द्वारा प्रेरित था। भारत में, पेंसिल का निर्माण 1915 में 'एफ. एन. गूपतो एवं कंपनी' द्वारा कोलकाता में हुआ। बाद में, अन्य पेंसिल निर्माता, **मद्रास पेंसिल फैक्ट्री** (1918 में मद्रास में स्थापित) एवं **जी. सी. लॉ एंड कंपनी** (1931 में कोलकाता में स्थापित) में पाए गए।

'ब्लैक लेड पेंसिल' के लिए, भारतीय मानक विशिष्टता निम्नलिखित चार प्रकारों को दर्शाती है, अर्थात् ड्राइंग पेंसिल, बढ़ई की पेंसिल, आशुलिपिक की पेंसिल और सामान्य लेखन के लिए पेंसिल।

ग्रेफाइट और चारकोल पेंसिल के विपरीत, रंगीन पेंसिल के केंद्र मोम या तेल आधारित होते हैं और इसमें पिगमेंट्स, एडिटिव्स और बाइंडिंग एजेंटों के अलग-अलग अनुपात होते हैं। पानी में घुलनशील (वॉटरकलर) पेंसिल, पेस्टल पेंसिल और साथ ही यांत्रिक पेंसिल के लिए रंगीन लीड भी निर्मित होती हैं।

क्विल्स की लोकप्रियता 19 वीं शताब्दी तक चली जब धातु निब के साथ पहली कलम सामने आई (हालांकि पहले भी धातु कलम की कोशिश की गई थी, लेकिन वे नहीं आ पाई)। बर्मिंघम के 'जॉन मिशेल', 1822 में बड़े पैमाने पर धातु के निब के साथ कलम का उत्पादन करने वाले पहले व्यक्ति थे। इनमें एक हैंडल और एक धातु बिंदु विभाजन के साथ था जिसमें डुबाने पर थोड़ी मात्रा में स्याही रहती थी। वे क्विल्स के समान काम करती थीं, लेकिन उसके विपरीत बहुत लंबे समय तक चलती थीं, उन्हें तीव्र (sharp) करने की आवश्यकता नहीं होती थी और उन्हें बहुत महीन बिंदु पर बनाया जा सकता था। 'एफ. बार्थोलोम्यू फोल्श' ने 1809 में एक कलम (स्याही जलाशय के साथ) के लिए इंग्लैंड में पेटेंट प्राप्त किया। फ्रांसीसी सरकार ने मई 1827 में एक फाउंटेन कलम का पेटेंट कराया जो कि रोमानियाई पेट्राचे पोनारू का एक आविष्कार था। बॉलपॉइंट पेन का आविष्कार 1888 में 'जॉन जे. लाउड' द्वारा किया गया और 1938 में 'लास्ज़लो बिरो' द्वारा इसमें सुधार किया गया था। स्लावोलजुब एडुआर्ड पेनकाला ने 1906 में मैकेनिकल पेंसिल और 1907 में पहली सॉलिड-इंक फाउंटेन कलम का आविष्कार किया।

फेल्ट-टिप्ड कलम, जो मार्करों और हाइलाइटर्स का पूर्ववर्ती था, वह जापान के 'युकियो होरी' का एक आविष्कार था। 1963 में, रोलर बॉल पेन (जो पानी आधारित स्याही का उपयोग करता है), वह भी जापान से था। झरझरा पॉइंट पेन जिसमें झरझरा सामग्री जैसे कि फेल्ट या सिरामिक से बने पॉइंट होते हैं, 1990 के दशक में दिखाई दिए। हम, आज भी लिखने और ड्राइंग के लिए पेन और पेंसिल का उपयोग करते हैं, और साथ ही साथ स्टाइलस का भी टच स्क्रीन पर प्रयोग करते हैं।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 79-83 (2024)

भारत में आर्द्रभूमियाँ

सिंचिता बिस्वास एवं डॉ. उमेशकुमार ल. तिवारी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

परिचय : जलीय और स्थलीय बायोम के बीच क्रमिक क्षेत्र के रूप में आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र की एक बहुत ही महत्वपूर्ण संरचना बनाती है। आर्द्रभूमि को दलदल, पीट-भूमि या पानी के क्षेत्रों के रूप में परिभाषित किया जाता है, चाहे वे प्राकृतिक हों या कृत्रिम, स्थायी हों या अस्थायी, जिसमें पानी स्थिर या बहता हुआ, ताजा, खारा या नमकीन हो, जिसमें समुद्री क्षेत्र भी शामिल हैं, जिनकी गहराई ज्वार के समय छह मीटर से अधिक नहीं होती है (संदर्भ: अनुच्छेद 1, रामसर कन्वेंशन, 1971)। आर्द्रभूमि कार्बन पृथक्करण के रूप में कार्य करके और प्रदूषण के शमन में मदद करती हैं, एवं यह किसी भी क्षेत्र की जैव विविधता संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मिलेनियम इकोसिस्टम असेसमेंट (2005) का मानना है कि दुनिया भर में यह अनुमानीत है कि कुल 1,280 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र आर्द्रभूमि द्वारा आवृत है। हालाँकि, मूल संख्याएँ भिन्न हो सकती हैं क्योंकि ये संख्याएँ शोधकर्ताओं के विभिन्न समूहों द्वारा एकत्रित किए गए अध्ययनों का परिणाम हैं, जिनमें आर्द्रभूमि को परिभाषित करने वाले मापदंडों को निर्धारित किया गया है, जो अनुरूप हो सकते हैं लेकिन बिल्कुल समान नहीं हो सकते। इसलिए, कुछ छोटी- छोटी आर्द्रभूमियों पर विचार न किए जाने की संभावना को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता। वैश्विक स्तर पर ठीक-ठीक मूल्यांकन करने पर यह संख्या बहुत बड़ी हो सकती हैं।

रामसर कन्वेंशन : दुनिया भर में आर्द्रभूमियों के महत्व को ध्यान में रखते हुए 1971 में ईरान के रामसर शहर में एक सम्मेलन (अंतरराष्ट्रीय संधि) का आयोजन किया गया और जिसमे दुनिया के 172 देशों ने हस्ताक्षर किए और यह 1975 में लागू हुआ। सम्मेलन में अनुबंध करने वाले पक्षों को अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों की सूची में शामिल करने के लिए अपने क्षेत्र के भीतर उपयुक्त आर्द्रभूमियों को नामित करने के लिए अधिसूचित किया गया है, जिसमें संबंधित आर्द्रभूमि से सटे तटवर्ती या तटीय क्षेत्र भी शामिल हो सकते हैं। सम्मेलन में अनुबंध करने वाले पक्षों को सूचीबद्ध आर्द्रभूमियों के विवेकपूर्ण उपयोग और संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए अपने विचारों और योजनाओं को तैयार करने और उन्हें लागू करने की सलाह दी गई है। वर्तमान में, संयुक्त राष्ट्र, 2024 के डेटाबेस के अनुसार दुनिया भर में 2,514 रामसर स्थल हैं। भारत 1982 में सम्मेलन का एक पक्ष बना और वर्तमान में भारत में 80 रामसर स्थल हैं और यह क्षेत्र भारत के जैव विविधिता क्षेत्रो में जैसे पश्चिमी हिमालय, गंगा के मैदान, पूर्वोत्तर भारत, अर्ध शुष्क और शुष्क क्षेत्र तथा प्रायद्वीपीय भारत, जिसमें अधिकांश आर्द्रभूमि प्रायद्वीपीय क्षेत्र में वितरित है। (संदर्भ: चौधरी एवं मूर्ति, 2000)

मैंग्रोव आर्द्रभूमि वन- ऐरोली और विक्रोली आर्द्रभूमि, मुंबई

आर्द्रभूमियों का सार्वत्रिक रेखा-चित्र : वर्तमान परिस्थिति में, दुनिया भर में 2514 रामसर स्थलों को नामित किया गया है। परंतु आर्द्रभूमियों की मूल संख्या बहुत अधिक हो सकती है, क्योंकि सम्मेलन में केवल अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियों पर प्रकाश डाला गया है। आर्द्रभूमियों के क्षेत्र वितरण पर महाद्वीप के अनुसार अध्ययन से पता चलता है कि एशिया (31.8%) में आर्द्रभूमि का सबसे अधिक क्षेत्र है, इसके बाद उत्तरी अमेरिका (27.1%), लैटिन अमेरिका और कैरिबियन (15.8%), यूरोप (12.5%), अफ्रीका (9.9%) और ओशिनिया (2.9%) (संदर्व: डेविडसन एट अल, 2018) का स्थान है। यह आँकड़ा महाद्वीपों के संबंधित आकार के अनुरूप नहीं है, जो स्पष्ट रूप से आर्द्रभूमि के निर्वाह में कई कारकों के प्रभाव को दर्शाता है। इसके अलावा, यूरोप में आर्द्रभूमि की संख्या भी अलग-अलग प्रवृत्ति दिखाती है, जहाँ यूरोप में सबसे ज़्यादा आर्द्रभूमि 1133 हैं, उसके बाद एशिया (432) और अफ्रीका (425) हैं, जो बताता है कि किसी देश

हेमकुंड साहब के पास वेटलैंड, चमोली उत्तराखंड

के पूरे क्षेत्र में कई छोटी आर्द्रभूमि बिखरी हो सकती हैं। दीर्घकालिक अध्ययनों से पिछले कुछ वर्षों में आर्द्रभूमि क्षेत्र के नुकसान की कुछ हद तक सुसंगत प्रवृत्ति दिखाई है, यह दर्शाता है कि तेजी से नुकसान तटीयो क्षेत्रो की तुलना में अन्तर्देशियो आर्द्रभूमि को हो रहा है।

भारत में आर्द्रभूमि : भारत एक बहुत ही विविधतापूर्ण देश है। भारतीय भूभाग में उत्तरी बर्फ से ढके पर्वतीय क्षेत्र, शुष्क रेगिस्तानी क्षेत्र, गंगा के मैदान और तटीय पर्वत श्रृंखलाएँ (पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट) शामिल हैं। भारत में 50 से ज़्यादा नदियों का एक संजाल है जो बड़ी से मध्यम महत्व की हैं एवं यह नदियाँ न केवल देश की स्थलाकृति को प्रभावित करती हैं बल्कि इसकी आबादी की आजीविका पर भी बड़ा असर डालती हैं। ये नदी घाटियाँ कई उथले जल निकायों को पोषित करती हैं जिनका जल स्तर आमतौर पर सतह पर या उसके पास होता है, जिससे आर्द्रभूमि का निर्माण होता है।

आर्द्रभूमि के प्रकार : आर्द्रभूमि की अवधारणा उनके वैश्विक विस्तार की तरह ही विशाल और व्यापक है। वैश्विक स्तर पर वेटलैंड के प्रकारों का कोई भौतिक वर्गीकरण नहीं है। इसरो के अंतरिक्ष उपयोग केंद्र और भारत सरकार के पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से निष्पादित राष्ट्रव्यापी आर्द्रभूमि मानचित्रण (वेटलैंड मैपिंग) (1993-98) के कार्यान्वयन के साथ, भारत में रामसर स्थलों के लिए एक सूची तैयार की गई थी, हालांकि यह सूचि अधिकतर जलाशयों, तालाबों जैसे लगभग सभी गहरे पानी के आवासों तक विस्तारित थी। यह वर्गीकरण आर्द्रभूमि जल विज्ञान और आर्द्रभूमि वनस्पति के आधार पर किया गया था। मोटे तौर पर, दो मूल प्रकार के आर्द्रभूमि होते हैं अर्थात अंतर्देशीय और तटीय; जिनमें से प्रत्येक को आगे दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है अर्थात प्राकृतिक और मानव निर्मित।

अंतर्देशीय आर्द्रभूमि : अंतर्देशीय आर्द्रभूमि में पानी की निरंतर आपूर्ति नहीं होती है और वे ज़्यादातर ठहरे पानी या नियमित वर्षा पर निर्भर रहते हैं। ये आम तौर पर ताजे पानी की आर्द्रभूमि होती हैं। प्राकृतिक अंतर्देशीय आर्द्रभूमि में झीलें, तालाब, गोमुख झीलें, नदी के किनारे दलदल, पानी से भरे दलदल आदि शामिल हैं। मानव निर्मित अंतर्देशीय आर्द्रभूमि में मानव निर्मित जलाशय, बैराज, राख के तालाब, नमक के तालाब आदि शामिल हैं। भारत में सबसे बड़ी प्राकृतिक अंतर्देशीय आर्द्रभूमि राजस्थान की सांभर झील है, जो खारे पानी की आर्द्रभूमि है।

तटीय आर्द्रभूमि : यह क्षेत्र देश के तटीय सीमा के निकट स्थित समुद्री आर्द्रभूमि क्षेत्र हैं, इसमें प्राकृतिक तटीय आर्द्रभूमि में मुहाना, खाड़ियाँ, प्रवाल भित्तियाँ, मैंग्रोव आदि शामिल हैं तथा नमक के तालाब और जलीय कृषि तालाब मानव निर्मित तटीय आर्द्रभूमि में शामिल हैं। भारत में सबसे बड़ी तटीय आर्द्रभूमि ओडिशा की चिल्का झील है, जो एक प्राकृतिक खारे पानी का लैगून है।

नौरादेही वन्यजीव अभयारण्य में आर्द्रभूमि

आर्द्रभूमि और उनका महत्व : पिछले कुछ दशकों में आर्द्रभूमियों ने बहुत महत्व प्राप्त कर लिया है क्योंकि ये वनस्पतियों और जीवों की व्यापक विविधता को बनाए रखने और सहारा देने के साथ-साथ स्थानीय आबादी को कई अनुकूल पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करने की क्षमता रखती है। भारत में वर्तमान में 80 रामसर स्थल (अंतरराष्ट्रीय महत्व के क्षेत्रों के रूप में नामित आर्द्रभूमि) हैं। आर्द्रभूमियों द्वारा प्रदान की जाने

ताडोबा झील, ताडोबा टाइगर रिजर्व

वाली सेवाओं को चार प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात प्रावधान (भोजन, फाइबर, ईंधन, दवाइयां, सजावटी पौधे आदि जैसे संसाधनों का निर्माण), विनियमन (जलवायु विनियमन, भूजल पुनर्भरण और जल निकासी, कुछ पोषक तत्वों या प्रदूषकों को रोकना और हटाना, कटाव और बाढ़ और तूफान सहित अन्य प्राकृतिक खतरों से सुरक्षा), सांस्कृतिक (सौंदर्य, आध्यात्मिक या पर्यटन सहित मनोरंजक) आर्द्रभूमि द्वारा प्रदान की जाने वाली विनियमन और सहायक सेवाएँ जल भंडारण के लिए जलाशयों के रूप में उनकी शक्तिशाली भूमिका की ओर संकेत करती हैं, साथ ही अनुपयोगी जल को शुद्ध करने में भी। आर्द्रभूमि की संभावित भूमिकाओं और लाभों को समझने के लिए विभिन्न संगठनों द्वारा कई उपाय किए गए हैं। ऐसा ही एक प्रयास भारत में पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा संयुक्त रूप से राष्ट्रीय आर्द्रभूमि की सूची और मूल्यांकन (NWIA) परियोजना का निर्माण किया जिससे राष्ट्रीय आर्द्रभूमि एटलस तैयार किया गया हैं।

भारतीय आर्द्रभूमि के प्रकार में विविधताएँ है, जो उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रो से लेकर समुद्री छोर तक फैली हुई है। भारत में, कुल आर्द्रभूमि क्षेत्र उसके कुल भौगोलिक क्षेत्र का 4.86% है जो 1,59,81,516 हेक्टेयर में फैला हुआ है, जो लगभग 2,31,195 आर्द्रभूमि हैं, जिनमें से 43.9% अंतर्देशीय प्राकृतिक आर्द्रभूमि का क्षेत्र है, 30.2% अंतर्देशीय मानव निर्मित आर्द्रभूमि है, 22.7% क्षेत्र तटीय प्राकृतिक आर्द्रभूमि है और 3.2% तटीय मानव निर्मित आर्द्रभूमि है (संदर्भ: भारतीय आर्द्रभूमि का अंतरिक्ष आधार अवलोकन, एसएसी, इसरो, 2021)।

तमिलनाडु में अंतर्देशीय आर्द्रभूमि की संख्या सबसे अधिक है, जहाँ 25,000 से अधिक आर्द्रभूमि हैं, उसके बाद महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश का स्थान है, जबकि पश्चिम बंगाल लगभग 12,000 आर्द्रभूमि के साथ दसवें स्थान पर है। दूसरी ओर, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, गोवा, गुजरात, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में कई तटीय द्वीप हैं जिनमें समुद्री आर्द्रभूमि हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि यद्यपि 2006-07 से 2017-18 तक भारत में आर्द्रभूमि क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन तटीय प्राकृतिक आर्द्रभूमि में काफी कमी आई है (इसरो, 2021)।

आर्द्रभूमि द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएँ : आर्द्रभूमियाँ कई सेवाएँ प्रदान करती हैं जो उन्हें जैव विविधता संरक्षण की दौड़ में एक मजबूत दावेदार बनाती हैं। आर्द्रभूमि द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को 3 प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

सहारनपुर के पास आर्द्रभूमि-सारस क्रेन

a) अनंतिम आर्द्रभूमि सेवाएँ: इसमें वे सेवाएँ शामिल हैं जो मुख्य रूप से भोजन, कच्चा माल, ताज़ा पानी और औषधीय पौधे आदि जैसे संसाधन प्रदान करता हैं।

b) सांस्कृतिक आर्द्रभूमि सेवाएँ: इसमें वे सेवाएँ शामिल हैं जो नागरिकों को एक स्वाभाविक सौंदर्य संतुष्टि प्रदान कर सकती हैं जिसमें शारीरिक, भावनात्मक या मानसिक ज़रूरतें भी शामिल है।

c) विनियामक आर्द्रभूमि सेवाएँ: इनमें सूखा, बाढ़, सुनामी, जल प्रदूषण, वायु गुणवत्ता प्रबंधन या क्षेत्रीय वर्षा निगरानी जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाएँ या आपदाएँ को माना जाता है।

पेंच में वेटलैंड

भारतीय आर्द्रभूमि की पुष्प विविधता : नंदी एट आल ने 2011 में अनुमान लगाया था कि भारतीय आर्द्रभूमि में 1,440 विभिन्न पौधों की प्रजातियाँ हैं जिनमें से 50% एंजियोस्पर्म हैं जबकि अन्य प्रमुख समूहों में शैवाल (45%) और टेरिडोफाइट्स शामिल हैं। हाल ही में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने रामसर स्थलों की वनस्पति पर संग्रह (खंड I और II) प्रकाशित किया है जो भारत में 75 रामसर स्थलों की बिभिन्नो पौधों की प्रजातियों की बारे में गहरी जानकारियां प्रदान करता है, जिसमें कुल 4,126 प्रजातियों की सूचना दी गई है। एंजियोस्पर्मिक पौधों की प्रधानता 3,226 प्रजातियों में प्रचलित है जबकि शैवाल के 647 प्रजातियों की जानकारी उपलब्ध कराइ गई है। एंजियोस्पर्मो में, पोएसी परिवार (353) के बाद फैबेसी (322), साइपरेसी (223) साइपेरस भारत की आर्द्रभूमियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाली पौधों की जातियां है।

भारतीय आर्द्रभूमि पर खतरे और मुद्दे : भारत में मीठे पानी और खारे पानी की आर्द्रभूमि कुछ बड़े खतरों से ग्रस्त हैं। इनके लुप्त होने का खतरा निम्नत: आर्द्रभूमि के प्रकार, स्थान और मानवजनित दबाव पर निर्भर करता है। शुष्क क्षेत्र की आर्द्रभूमि में अनियमित वर्षा जैसी समस्याएँ हैं, जबकि मीठे पानी की आर्द्रभूमि कठोर कृषि पद्धतियों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि के प्रभावों का सामना कर रही हैं। आर्द्रभूमि के अस्तित्व की अन्य महत्वपूर्ण चिंताओं में शहरीकरण, अनियोजित औद्योगिकीकरण, मछली पकड़ने और खेती की गतिविधियों में वृद्धि, औद्योगिक अपशिष्ट, कीटनाशकों, सीवेज के पानी से प्रदूषण, पर्यटन का दबाव, खरपतवार संक्रमण आदि शामिल हैं। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के रूप में निकट भविष्य में सबसे क्रांतिकारी चुनौतियों में से एक प्राकृतिक आपदाओं के खतरों के अलावा स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता पर खतरा पैदा हो सकता है।

हिमालय क्षेत्र की उच्च ऊंचाई वाली आर्द्रभूमि में प्रमुख चुनौतियाँ :

- हिमालय के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्र में आर्द्रभूमि पर स्पष्ट डेटा उपलब्ध नही है। उदाहरण के लिए, विशेष रूप से उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में, सीमित डेटा उपलब्ध है जैसे की पारिस्थितिकी, जल विज्ञान चक्र, पीटलैंड वितरण और आर्द्रभूमि पर जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभावों, इत्यादि।
- अनुसंधान को नीति में एकीकृत करने में जटिलता।
- आर्द्रभूमि पर अधिकार क्षेत्र का दावा करने वाले विभिन्न सरकारी संस्थानों के साथ स्वामित्व का मुद्दा, जिसके परिणामस्वरूप आर्द्रभूमि प्रबंधन के लिए समन्वित एवं रणनीतिक प्रयास मे कमी आई है।
- योजना और निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्थानीय लोगों और अन्य हितधारकों की भागीदारी का अभाव। आर्द्रभूमि संसाधनों, पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता पर स्थानीय समुदायों की निर्भरता के बारे में खराब समझ और कार्य।
- अनियोजित विकास गतिविधियाँ, अनियमित पर्यटन, आर्द्रभूमि संसाधनों का अत्यधिक दोहन, अपशिष्ट निपटान और अवसादन।

आर्द्रभूमि का प्रबंधन और आगे की राह : आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र पर उक्त खतरों के कारण आर्द्रभूमि के संरक्षण के लिए उचित प्रबंधन योजनाओं के कार्यान्वयन की आवश्यकता है। संरक्षित क्षेत्रों के प्रभावी नेटवर्क की तैयारी के लिए समग्र दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए 1980 के दशक के दौरान आर्द्रभूमि पर राष्ट्रीय समिति की सिफारिश पर ऐसी पहल की गई थी, जिनमें बहुत से संवेदनशील आर्द्रभूमियाँ शामिल हैं। हाल ही में आर्द्रभूमि नियम, 2017 के तहत राष्ट्रीय आर्द्रभूमि समिति का गठन किया गया था, जो मुख्य रूप से आर्द्रभूमि के

जल विज्ञान, पारिस्थितिकी, मत्स्य पालन, भूदृश्य नियोजन और सामाजिक-अर्थव्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करती है। आर्द्रभूमि नियम 2017 आर्द्रभूमि की सीमाओं और उनके प्रभाव क्षेत्र के साथ-साथ उनके पारिस्थितिक चरित्र विवरण के सीमांकन की आवश्यकता पर जोर देता है। आर्द्रभूमि नियम 2017 किसी भी तरह के अतिक्रमण, निर्माण और विध्वंस अपशिष्ट के निपटान, ठोस अपशिष्ट डंपिंग, अनुपचारित अपशिष्ट के निर्वहन, अवैध शिकार आदि जैसी गतिविधियों पर भी प्रतिबंध लगाता है। वर्गीकृत प्रबंधन के साथ लगाए गए इन प्रतिबंधों से अच्छे परिणाम मिलेंगे और निकट भविष्य में आर्द्रभूमि के नुकसान के जोखिम को कम किया जा सकेगा। हालांकि, इन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए आर्द्रभूमियों का एक राष्ट्रव्यापी डेटाबेस तैयार करना होगा जो आर्द्रभूमियों से संबंधित सभी सूचनाओं को संग्रहित करने के लिए एक व्यापक कोष के रूप में काम करेगा, जिसमें उनकी भौगोलिक विशेषताओं, वनस्पति और जीव संरचना, जल गुणवत्ता आदि शामिल हैं। परिवर्तनों के स्तर और उनके कारणों का आकलन करने और उनकी रोकथाम के तरीकों को नामित करने में मदद करने के लिए समय-समय पर निगरानी की आवश्यकता होगी। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि भारत में आर्द्रभूमियों की प्रचुरता पर कई संगठन काम कर रहे हैं। सरकार ने दिशा-निर्देशों और प्रबंधन योजनाओं के रूप में कदम उठाए हैं। आर्द्रभूमि (संरक्षण और प्रबंधन) नियम, 2017 को लागू करने के लिए दिशा-निर्देशों में आर्द्रभूमियों के विशिष्ट चरित्रों का दस्तावेजीकरण करके, उनके प्रभाव क्षेत्र को चित्रित करके शहरीकरण या अन्य ऐसी गतिविधियों को रोकने के लिए आर्द्रभूमियों को चित्रित करने पर जोर दिया गया है जो आर्द्रभूमियों के स्वास्थ्य पर खतरा पैदा करती हैं। इसके अलावा, नियमों में अनुशंसित पारिस्थितिक लक्षण वर्णन भी मानव जाति को सेवाएं प्रदान करने में उनकी क्षमता की पहचान करने में फायदेमंद है। इसके अलावा आर्द्रभूमियों में विनाशकारी गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए सख्त दिशा-निर्देश भी दिए जा सकते हैं और निकट भविष्य में आर्द्रभूमियों के नुकसान को रोकने के लिए जागरूकता कार्यक्रम और योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। आर्द्रभूमि क्षेत्रों के दस्तावेजीकरण, निगरानी और सुरक्षा के लिए स्थानीय एजेंसियों/निकायों को भी नियुक्त किया जा सकता है।

इसलिए, स्वच्छता बनाए रखने के लिए एक उचित प्रबंधन नीति, आर्द्रभूमि द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का उपयोग करने के लिए तकनीकी प्रगति के साथ अनुमत सीमाओं में कृषि गतिविधियों की निगरानी, सतत विकास लक्ष्यों और सभी के लिए एक बेहतर विश्व के निर्माण की दिशा में आशा की किरण दिखाती है।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 84-86 (2024)

फ्लोमोइडस सुपर्बा की जनसांख्यिकी पर संभावित खतरे एवं वर्तमान स्थिति

आरती गर्ग एवं एस.के. सिंह

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र,देहरादून

फ्लोमाईडी जाति में अन्तर्निहित प्रजाति फ्लोमोइडस सुपर्बा एक ऐसा पौधा है जो फूलित अवस्था में अत्यंत ही आकर्षक प्रतीत होता है I प्राकृतिक रूप में यह हिमालय की तलहटी में पाया जाता है। अतः अनौपचारिक रूप में इसे 'गोल्डन हिमालयन स्पाइक' भी कहते है I जाति फ्लोमाईडी के अंतर्गत वैश्विक स्तर पर 250-278 जातियाँ पाई जाती है जोकि छह वंशो - एरेमोस्टैचिस, लैमियोफ्लोमिस, नोटोकीट, फ्लोमिस, फ्लोमोइडस तथा स्यूडोएरिमोस्टेकिस से सम्बन्ध रखती हैं I इस जाति के सदस्य मुख्य रूप से यूरोप से मंगोलिया, चीन और भारत तक उप-अल्पाइन और अल्पाइन क्षेत्रों में वितरित हैं। इनके पौधे गैर-सुगंधित जड़ी-बूटियों, उप-झाड़ियों या झाड़ियों के रूप में पाए जाते हैं तथा पुष्पक्रम थिरसॉइड होताहै I कभी कभी इनमें रेसीमॉइड पुष्पक्रम भी पाए जा सकते है जिनमें एकल से लेकर कई-फूल वाले बहुवर्ध्यक्ष होते हैं। फूलों में आमतौर पर द्विपाद,जाइगोमॉर्फिक दलपुंज होता है, जिसका पिछला होंठ विशिष्ट रूप से लम्बा, हुडदार होता है तथा बाहरी किनारे घनी से विरल दाढ़ीदार होतेहैं। इनके पुंकेसर विभिन्न प्रकार से फैले तथा असामान्य या सामान्य रूप से खंडित शैलियों के होते हैं तथा इनके फल चिकने या रेशेदार नटलेट होते हैं।

भारत में फ्लोमोइडस सुपर्बा गढ़वाल हिमालय की तलहटी के सीमावर्तीय वन स्थलों में तथा आंशिक रूप से खुले स्थानों, चूना पत्थर की चट्टानों पर और ज्यादातर एस्टेरेसी, यूफोफोर्बिएसी और फैबेसी कुल के सदस्यों के साथ दोमट मिट्टी में पायी जाती है। देहरादून की निचली शिवालिक पहाड़ियों में खीरी दर्रे (जिसे अब मोहंद दर्रे के नाम से जाना जाता है) से 1832 में संग्रह के आधार पर रॉयल नेफ्लोमोइडस सुपर्बा को एक नई जाति के रूप में वर्णित किया था I तत्पश्चात लगभग एक सदी उपरान्त 1940 में इसे हिमाचल प्रदेश से पुनः एकत्र किया गया। इस जाति पर आरोपित प्राकृतिक और मानवजनित दोनों तरह के गंभीर खतरोंके परिपेक्ष में इसे संवेदनशील तथा 'लुप्तप्राय' दर्जा दिया गया तथा इसकी निरंतर घटती आबादी के फलस्वरूप यह 'गंभीर रूप से लुप्तप्राय' श्रेणी में रखा गया। तत्पश्चात इसकी उपलब्धता हेतु इस पौधे की जनसांख्यिकी की ओर विशेष ध्यानाकर्षण केन्द्रित करते हुए इसके प्रजनन तंत्र तथा अनदेखे क्षेत्रों में इसके पाए जाने की संभावना हेतु व्यापक सर्वेक्षण किया जाने लगा और इसी क्रम में इसकी जनसंख्या संरक्षण और सुरक्षा हेतु इस जाति को देहरादून के उत्तरी क्षेत्रीय केंद्रसे संबद्ध उद्यान में प्रत्यारोपण किया गया जहाँ यह आज प्रचुर मात्र में पनप रहा है।

विकास और पुष्पन अन्तराल : फ्लोमोइडस सुपरबामें मानसून के पश्चात सितंबर माह के अंत में कंद मूल स्टॉक सेपत्तियां निकलनी प्रारंभ होती हैं I मध्य दिसंबर तक पत्तियां गुच्छे में परिपक्व हो जाती हैं तथा जनवरी के अंत तक पुष्पक्रम उभर कर 120–180 सेमी तक बढ़ जाता है I फरवरी के मध्य तक 3–5 जोड़ी फूलदार पत्तियों को धारण कर लेता है, जो एक खड़ी, घनी ऊनी, लगभग 30 सेमी लंबी स्पाइक में समाप्त हो जाती है I इस स्पाइक में 30–60 फूलों वाली प्राकृतिक आबादी के विपरीत एक्स-सिटू स्थिति में 100–130 फूल लगते हैंजो 8–10 फूलों के घने चक्रों में दिखाई देते हैं, और 5 के वर्टिसिलेस्टर्स में अक्ष के दोनों ओरघने ऊनी ब्रैक्ट की धुरी में व्यवस्थित होते हैं। पुष्पक्रम विकसित होने के साथ ही कलियां प्रस्फुटित होने लगती हैं और मार्च माह में जब तापमान 30–35 डिग्री सेल्सियस पहुचने लगता है तब पुष्प खिलने प्रारंभ हो जाते हैं जो केन्द्रापसारक अनुक्रम में परिपक्व होते हैं,

और प्रत्येक चक्र के विपरीत ब्रैक्ट्स में एक साथ होते हैं। चरम-पुष्पन मार्च के तीसरे सप्ताह के दौरान होता है जब एक समय में 70% से अधिक फूल खिलते हैं और इस समय फूलित स्पाइक्स अतिसुंदर प्रतीत होती हैं। प्रत्येक पुष्प लगभग 4–5 दिनों तक खिलता है जिसके बाद कोरोला मुरझा कर गिर जाता है और पीछे स्थायी कैलिक्स के घेरे में चार नटलेट छोड़ जाता है। स्फुटन कलियों और परागकोषों के भीतर ही हो जाता है और परागकोषों के निचले होंठ पर क्रीम रंग का पराग छोड़ देता है, जिसमें से कुछ पराग परागकोषों पर शिथिल रूप से चिपके रहते हैं। फूल 4 बीजांडों के मुकाबले लगभग 1,44,560 पराग (एसडी = 1200) उत्पन्न करते हैं, जिसका औसत पराग उत्पादन 33,600 प्रति परागकोश और 95% व्यवहार्यता है। सभी चार बीजांड बीजों में विकसित होने में सक्षम हैं। बीज या तो सभी स्वस्थ 12–13 मिमी लंबे होते हैं जिनका औसत वजन 31 मिलीग्राम (28–32.5 मिलीग्राम) होता है, या सभी 4–5 मिमी लंबे, सिकुड़े हुए, खाली और लगभग सूखे हुए होते हैं।

पौधा-परागण सह-अनुकूलन और प्रजनन तंत्र : फ्लोमोइडस सुपर्बा के फूलों और परागण करने वाली मधुमक्खियों के बीच असहजीवी संबंध पाया गया है, जिसमें दो मधुमक्खी प्रजाति -सेराटिनाहीरोग्लिफ़िका और नोमिया रस्टिका ही सक्रिय और प्रभावी परागणकर्ता पाई गयी हैं l ये मधुमक्खियाँपराग के बदले फूलों को पराग-स्थानांतरण से लाभान्वित करती है l मधुमक्खियों द्वारा पराग के अनूठे संग्रह के दौरान वे निचले करोला होंठ पर उतरकर अंदर की ओर रेंगती हैं और पुंकेसर पर चढ़कर परागकोष और स्टिग्मा तक पहुँच जाति हैं। इस प्रक्रिया के दौरान मधुमक्खियाँ उलटी स्थिति में काम करती हैं और उनके शरीर के बालों में उलझकर पराग उनके पैरों में स्थित पराग-टोकरियों में पैक किया जाता है तदोपरांत यह पराग स्टिग्मा चूने पर उसकी सतह पर चिपक जाता है और फलस्वरूप परागण प्रक्रिया संपन्न हो जाती है। इस प्रक्रिया के मध्य मधुमक्खियाँ एक ही और अलग-अलग पुष्पक्रमों पर पुष्प-निष्ठा व्यवहार प्रदर्शित करते हुए छोटी उड़ानें भरती हैं जिससे परागण प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से परिपूर्ण हो जाती है l

वनस्पति प्रसार : फ्लोमोइडस सुपरबा जाति में प्राकृतिक आवास में प्रजनन और बीज-अंकुरण अवरोध स्थापित होने के कारण इसकी मोटी एवं गहराई से प्रवेश करने वाली प्रकंद द्वारा ही यह बारहमासी रह पता है। इस प्रजाति का वनस्पति प्रसारमुख्य पौधे की कलियों एवं पूर्ण रूप से विकसित बेसल रोसेट के पत्ते को इन्डोल ब्यूटिरिक एसिड (IBA) द्वारा उपचार करके तेजी से फैलाना संभव है l 100 पी पी एम इन्डोल ब्यूटिरिक एसिड द्वारा किया गया उपचार जड़ें को विकसित करने में सक्षम होता है किन्तु बीजों के माध्यम से यह प्रवर्धन इतना प्रभावी नहीं होता जिससे फूल आने में लगभग तीन वर्ष का समय लग जाता है।

बीज स्थापना तथा अंकुरण : फ्लोमोइडस सुपरबा के बीज प्राकृतिक परिस्थितियों में अंकुरित नहीं हो पाते किन्तु विकास नियामकों के साथ एमएस माध्यममें नियंत्रित परिस्थितियों में इनका अंकुरण संभव होता है l सामान्य तापमान में 6 महीने तक बीजों का भंडारण किया जा सकता है किन्तु इससे अधिक् समय का भण्डारण बीज-अंकुरण क्षमता को कम कर देता है l अंकुरित पौधे ग्रीनहाउस स्थितियों के तहत अच्छे विकसित होते है और प्रत्यारोपण के छह सप्ताह पश्चात भी उचित देखभाल द्वारा जीवित रखे जा सकते है l इस विधि द्वारा तैयार किए गए पौधों को प्राकृतिक परिस्थितियों में सफलतापूर्वक प्रत्यारोपण किया जा सकता है तथा यह उपायउन्नत खोज, अनुकूलनशीलता एवं प्रजाति के गुणन और जर्मप्लाज्म संरक्षण हेतु सर्वोत्तम है।

फ्लोमोइडस सुपरबा पौधे के उपयोग : अत्यधिक सजावटी पुष्पक्रम के कारण यह पौधा सौन्दर्यीकरण हेतु उपयोग में लाया जाता है तथा इसके जड़ कंद में ऐसे औषधीय गुण होते हैं जो गायों और भैंसों सहित मवेशियों में स्तनदाह को ठीक करने और दूध देने की क्षमता को बहाल करने में उपयोगी होते है l इसमें पाए जाने वाले बायोएक्टिव घटकों का औषधि उपयोग एंटीडिप्रेसेंट और एंटीऑक्सीडेंट के रूप में किया जाता है तहत इसी क्रम में इसकी जड़ोंको मानवयकृत, पेट, गठिया आदि से संबंधित बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है। अतः इस पौधे की जड़ों का अत्यधिक मात्र में दोहन किया जाना स्वाभाविक है l

फ्लोमोइडस सुपरबा पर संभावित ख़तरे की परिस्थितियां : फ्लोमोइडस सुपरबा को मोहन्ड इलाके में आबादी पर कई खतरों का सामना करना पड़ रहा है जिसके परिणाम स्वरुप यह प्रजाति 'गंभीर रूप से लुप्तप्राय'जातियों की श्रेणी में चिन्हित है।

1. अतिशोषण – वसंत ऋतु के दौरान चरवाहे, गुज्जर और बकरवाल बड़ी मात्रा में औषधीय जड़ को खोद कर निकाल लेते है और भविष्य में गैर-स्तनपान कराने वाले मवेशियों में स्तन पान को प्रेरित करने के लिए गायों, भैंसों और बकरियों को खिलाने हेतु तथा मानव यकृत, पेट, गठिया आदि से संबंधित बीमारियों को ठीक करने के लिए भंडारण कर लेते हैं।
2. इस पौधे का प्राकृतिक आवास ज्यादातर परिवहन मार्गों के किनारे पर होने के कारण सड़क चौड़ीकरण प्रक्रिया में इनका निवास स्थान ही नष्ट हो जाता है।
3. इनके स्थानीय इलाके, मोहंड में हाथियों की चहल कदमी और पशु चारण आम बात है जिसके परिणामस्वरूप विकसित तथा अविकसित सभी पौधे टूट जाते हैं।
4. जैविक कारक कीटों का संक्रमण और भृंगों और जंगली जानवरों (साही, सूअर और चूहों) द्वारा कंदों को खोदकर खा लेने की प्रक्रिया पौधों को जड़ समेत नष्ट कर देती है, साथ ही इनकी शीर्ण पुनर्जनन क्षमता के फलस्वरूप पौधों की जनसँख्या को भारी क्षति पहुंचती है।
5. फ्लोमोइडस सुपरबा के पौधे सामान्यतः आउट-क्रॉसिंग के लिए अनुकूलित होते हैं , किन्तु विशिष्ट परागणकों की सामान्य परागण सीमा के भीतर आस-पास अन्य आबादी न होने के अवस्था में इनकी मजबूरन इन-ब्रीडिंग ही हो पाती है। इस इनब्रीडिंग अवसाद के फलस्वरूप आनुवंशिक परिवर्तनशीलता और संतान-शक्ति को अत्यधिक क्षति पहुंचती है।
6. कम जनसंख्या के कारण परागण की संख्या में गिरावट आती है, जिससे कारण बीज बनने की क्रिया भी कम हो जाती है साथ हि आनुवंशिक बहाव भी क्षीर्ण होने के फलस्वरूप अच्छी गुणवत्ता वाले पराग के लिए स्टिग्मा की सतह पर परागकण-प्रतिस्पर्धाउत्पन्न हो जातीहै।
7. प्राकृतिक परिस्थितियों में बीज की सुप्तावस्था हानिकारक होती है क्योंकि बीजों को भृंग, कीट, कृंतक और पक्षी खा जाते हैं, और इससे फंगल संक्रमण भी हो जाता है जिससे जनसंख्या वृद्धि की संभावना समाप्त हो जाती है।
8. प्राकृतिक परिस्थितियों में बीजों में अंतर्निहित-निष्क्रियता, कम-व्यवहार्यता और कम अंकुरणशीलता विकसित हो जाती है और ऐसे पर्यावरणीय दबाव में बीज निष्क्रिय होकर समाप्त हो जाते हैं।

जनसंख्या की वर्तमान स्थिति : 'गंभीर रूप से लुप्तप्राय' श्रेणी में चिन्हित फ़्लोमोइड्स सुपर्बा के जनसांख्यिकी अध्ययन द्वारा ज्ञात किये गए प्रभावी खतरों को केन्द्रित करते हुए इस प्रजाति की अन्य, कम-मूल्यांकित अथवा उपेक्षित आबादीयों के सर्वेक्षण द्वारा कुछ अन्य आबादियों का पता लगाया जा चुका है। वर्तमान में लगभग 1600 पौधों की उपलब्धता ज्ञात हो चुकी है जो निम्न है :

1. लगभग 400 पौधों की आबादी डोमेल में।
2. लगभग 700 पौधों की तादाद जम्मू के सुकेटोर, डोमेल और खंडेल गांव में।
3. दो अन्य आबदीयां जम्मू और कश्मीर के सुंदरबनी और राजौरी में।
4. दो अन्य आबादीयां हिमाचल प्रदेश के ऊना और कांगड़ा में।
5. लगभग 45 वर्ग मीटर क्षेत्र में अनुमानित 500 पौधे जम्मू और कश्मीर के उधमपुर जिले में।

इन सभी आबादी के अतिरिक्त, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केंद्र के प्रायोगिक उद्यान में जीवित एक्स सीटू पौधे तथा इसके स्थानीय निवास, मोहंड की आबादी को मिलकर लगभग 12 स्वस्थ आबादीयां विदित हो चुकी हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि वर्तमान परिवेश में फ़्लोमोइड्स सुपेर्बाजाति समय की कसौटी पर खरी उतरी है और इसकी स्वस्थ आबादीयों को देखते हुए अब इसे 'दुर्लभजातियों' की श्रेणी से बहाल करना सुनिश्तित किया जाना चाहिए।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 87-88 (2024)

वन एवं वन महोत्सव

प्रकाश होरो

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, अंडमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर

प्रतिवर्ष मनाते हम कई उत्सव
जिसका है हमारे जीवन में महत्व
किंतु उन उत्सवों में है एक उत्सव
जी हाँ ! वन महोत्सव, वन महोत्सव

जानते हैं हम सभी उसकी महत्ता
पुरातन युग से होती है इसकी चर्चा
पहली से सात जुलाई होता आयोजित
जागरूकता रैली, वृक्षारोपण कर मनाते यह उत्सव
जी हाँ ! वन महोत्सव वन महात्सव

वन महोत्सव को समर्पित मिले कई विषय अब तक
होते रहे उन पर आधारित कई काम
मिलता इसे, अनोखा, अनुपम, आदर्शयुक्त मान
जीवन के मूल को अर्पित रहता वनों का उत्सव
जी हाँ, वन महोत्सव, वन महोत्सव।

हम सबके जीवन से है उसका नाता
और कोई नहीं जननी वही, वही हमारी माता
रहे समर्पित उनको हर बार का उत्सव
जी हाँ, वन महोत्सव वन महोत्सव।

कहते हैं हम इस धरा को माता
वनों से सजा उसका आँचल सदैव ही भाता
कहलाती है धरनी, जननी व माता
इसी आदर्शोन्मुख भाव को केन्द्र में रखकर
उन्हीं को हों समर्पित यह उत्सव
जी हाँ, वन महोत्सव वन महोत्सव।

ज्यों मातृ तुल्य धरा भी करती
अपने बच्चों को कई संसाधन अर्पित
विकसित होता देश, समाज और विश्व उसी से
पर न जाने क्यों है हर बार वह उपेक्षित हमसे।

बाल-जीवन होता उन्हीं से पल्लवित पुष्पित
जो करती पोषित, गढ़ते संस्कार, गुणों से सिंचित
निखर आता जीवन, आकार लेता समुचित
मातृ-धरा को समर्पित हो यह उत्सव
जी हाँ, वन महोत्सव वन महोत्सव।

मानव जीवन की यही नियति
अकेले आए, अकेले चले जाना है
निरन्तरता का भाव मन में संजो कर
क्यों न दुगुणा जीवन जीएँ वृक्ष लगाकर

मातृ-धरा जो थी कभी वनों से सुसज्जित
विकास की अंधी दौड़ में सब भूल, पीछे हो चली
हमारे दिखावे, भोग-विलास की कुसंस्कृति में
भू-बंजर और वन, पर्यावरण, जलवायु सब,
जी हाँ सब ! दूषित हो चली, दूषित हो चली।

स्व-जागरूकता से जन-जागरूकता तक
मिलकर मुहिम चलाएँ जग में
वृक्षारोपण करें सदैव उत्साही होकर
प्रकृति के हम सक्रिय भागी होकर।

मातृ-धरा के आँचल को संजोना
हम बच्चों का कर्तव्य, होगा महान
अंधाधुन कटाव से बचाएं वनों को
लगाए वृक्ष, पाए प्रकृति का वरदान।

सभी धर्मों में मिला महत्व वन को
मिली शिक्षा ज्ञान, संदेश सदा
काव्यों, महाकाव्यों, ग्रंथों में हुई इसकी चर्चा
पर क्यों हुए विस्मृत हम, भूले इसकी महत्ता ।

भारतीय संस्कृति भी सिखाती हमें नित-निरंतर
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का मंत्र
पेड़-पौधे ही हैं सफल जीवन और प्रकृति के यंत्र
इसी से हो सकता निर्मित, स्वच्छ पर्यावरण का सुंदर तंत्र।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 89-89 (2024)

राजभाषा की आत्मकथा

थान सिंह निरंजन

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

सन् उन्नीस सौ उन्नचास,
मैंने नवजीवन पाया ।
सर्व सम्मति से संविधान ने,
एक मत मुझको अपनाया।
देव नागरी लिपि है मेरी,
और में हूँ जन की भाषा।
व्यक्त विचारो को करने का,
सबने एक माध्यम पाया।

कभी बनी गांधी की बोली,
कभी निराला की कविता।
संवादो और अभिव्यक्ति का,
नई नूतन अवसर पाया।
माँ की लोरी बनकर मैंने,
एक अलग सम्मान पाया।
भारत माँ के श्री चरणों में
राष्ट्रभाषा का स्थान पाया।

हिंदी हूँ मैं स्वाभिमानी हूँ
मुझे उपेक्षित मत करना।
निज भाषा से प्रेम करो,
मुझे उपेक्षित मत करना
मेरा बस एक ही है कहना।
बड़ी बेटी हूँ भारत माँ की,
अवधी उर्दू की बहना।

उच्च वर्ग को नहीं सुहाता,
मेरे शब्दो का कहना।
हेय दृष्टि और अपशब्दों से,
मुझे तिरस्कृत मत करना।
हिंदी हूँ मैं स्वाभिमानी हूँ,
गर्वीली और अभिमानी हूँ।
मनमानस और चित्त - वृत्त में,
सदा हृदय में तुम रखना।

हिंदी हूँ मैं, हिंदी हूँ मैं,
मेरा बस इतना है कहना,
मेरा बस इतना है कहना।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 90-90 (2024)

प्रकृति की सुन्दरता

थान सिंह निरंजन

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

मौन में कथा है, सरसराहट को सुनने की व्यथा है, झरझराते निनाद के मधुर स्वप्नो में सुबह है,

छन छन के आती किरनों में सौंदर्य की लालिमा है।

उन्मुक्त झोकों से झांकती छुपती बयार झन झन मटकती झटकती दमकती हुई सी झट है,

मौन में कथा है, सरसराहट को सुनने की व्यथा है कण कण में बिखरी चमकती सी स्वर्ण किरणों सी तपित,

लता स्वामिनी के रूप लवाद्य में भी कुछ छुपा है ।

निहारती क्षितिज को मंजरी की बन्द पलकें तरू से मिलन की बहकने की एक आशा है,

झोकों के मधुर स्पर्श से अंतर्मन के पटल पर स्मृति सी बनकर चमकती चंद्र मलिका है

कोपलों के कपोलों पर, रेखाओ में एक विस्मय है।

टीले से ताकत एकटक निहारते मत्स्यगंधा को मिचमिचाते नैनों में बस, दबोचने की उत्कंठा है,

सुन रहे हैं शोर व्याप्त चारों ओर गहन चिंतन अरण्य के आंगन मे भी सुप्त बीज जन्मा है ।

उमद घुमद कर दे रहे, बधाइयों का न्योता मेघ धन शस्यश्यामलय का दामन,

झिलमिलाता मोतिओं से मौन में अन्तर्नाद है, कलख है, खिसियाहट है,

चोनो के कुलाचे का आनंद कठोर हर्श मिश्रित है ।

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 91-91 (2024)

पर्यावरण की हत्या और जहरीला कचरा

कैलाश प्रसाद कुशवाहा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

वन धरती के लिए वरदान है | यह सभी जीवों को प्राण वायु प्रदान करता है | बीते कुछ दशकों में जंगलों की कटाई अंधाधुंध हुई है | धरती के लंग्स अमेजन जंगल दुनिया का सबसे बड़ा रेनफोरेस्ट है | इसे भी बहुत नुकसान पहुंचाया जा रहा है | पेड़ काटने या नदियों में गंदगी बहाने से इंसानों के साथ-साथ पूरी पारिस्थितिकी पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है | इसी तर्क के साथ विश्व के पर्यावरण कार्यकर्ता एकजुट हो रहें हैं | उनकी मांग है कि नरसंहार और अन्य गंभीर अपराधों की तरह ही पर्यावरण को नुकसान पहुंचाना एक प्रकार का इकोसाइड है और इसे भी गंभीर अपराध की श्रेणी में रखा जाए | इकोसाइड का तात्पर्य है पर्यावरण की हत्या |पेड़ों को काटना, जंगल में रहने वाले जीवों को नुकसान पहुंचाना, अवैध खनन, अवैध रुप से मछली पकड़ना, प्रदूषण फैलाना आदि पर्यावरण के खिलाफ हो रहे कामों की श्रेणी में आते हैं | वर्त्तमान में इन सबको मिलाकर **इकोसाइड** कहा जा रहा है |

कचरे का अवैध निपटारा : यह जानकार आपको आश्चर्य होगा कि कचरे का अवैध निपटारा पर्यावरण से जुड़ा वह अपराध है जिसके माध्यम से अपराधी खूब पैसे बना रहे हैं | इस कचरे में बायोडिग्रेडेबल कचरे से लेकर खतरनाक किस्म के इलेक्ट्रॉनिक सामान और खराब दवाएं भी शामिल हैं | इस प्रकार के कचरे के निपटारे के लिए हर देश दिशा-निर्देश भी जारी कर रखा है लेकिन पैसे बचाने के लिए अपराधी संगठन इस कचरे को अवैध तरीके से दूसरे देशों में ले जाकर छोड़ आते हैं | विकसित देश अपने कचरों को गरीब देशों की सीमाओं पर ले जाकर डंप कर रहे हैं | यूनाइटेड नेशंस के पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार अकेले अमेरिका अवैध कचरा तस्करी के द्वारा सालाना 12 अरब डॉलर कीमत का कचरा यहां-वहां पहुंचाता है | वर्ष 2018 में इन्टरपोल ने माना था कि कचरा तस्करी से तस्करों को लाखों मिलियन डॉलर्स का लाभ होता है और इसमें भी प्लास्टिक का कचरा सर्वाधिक होता है | कचरे का निपटारा खर्चीला काम है | कचरे को अवैध तरीके से निपटाने के लिए सबसे पहले इन कचरों को किसी उत्पाद का नाम दे दिया जाता है जिससे कि शिपमेंट आसान हो जाए और फिर अवैध मार्गों के द्वारा इन कचरों को एक जगह से दूसरे जगह तक भेज दिया जाता है | वर्ष 2019 में नाइजीरिया में एक शिपमेंट पकडा गया जिसमें 4 हजार टन जहरीला कचरा था जिसे फर्टिलाइजर के नाम से ट्रांसपोर्ट किया गया था | यह भी पता नहीं लग पाया कि यह कचरा कहां से आया | अंततः नाइजीरिया सरकार को इसे सुरक्षित तरीके से निपटारा करना पड़ा | फिलीपींस, घाना, नाइजीरिया, वियतनाम, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि भी अविध कचरे को झेल रहे हैं |

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कचरे निपटान संबंधी नियम भी हैं | इस संबंध में बेसल कन्वेंशन में एक इंटरनेशनल ट्रीटी पर भी हस्ताक्षर किया गया है | अब तक इसपर 188 देश सहमति दे चुके हैं | इस ट्रीटी में कचरे की तस्करी रोकने, कचरे के निपटान और नियंत्रण संबंधी नियमों का प्रावधान है | हालांकि इस ट्रीटी का बहुत अधिक लाभ नहीं मिल सका, इसीलिए वर्ष 2019 में इसमें कुछ संशोधन किए गए लेकिन इसके बावजूद गरीब देश आमिर देशों का कूड़ादान बन चुका है |

पर्यावरण कचरे के निपटान के लिए विश्व के सभी देशों को एकजुट होकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सख्त नियम व कड़े कानून बनाने होंगें |

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 92-94 (2024)

अंतर्राष्ट्रीय वन दिवस 2024 के अवसर पर प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र का वितरण

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर आयोजित योग प्रशिक्षण शिविर

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 92-94 (2024)

अंतर्राष्ट्रीय ओजोन दिवस पर आयोजित ड्रॉविंग प्रतियोगिता

'मिशन लाइफ' और 'एक पेड़ माँ के नाम' पर जागरुकता अभियान

ISSN: 0975-4342
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण | वनस्पति वाणी अंक 33: 92-94 (2024)

मिशन लाइफ के अंतर्गत आयोजित गतिविधियां।

मिशन लाइफ के अंतर्गत आयोजित गतिविधियां।